साझा श्रम

बाघ की दहाड़ और समाज की खुशहाली

राजेश रवि – जिनेश जैन

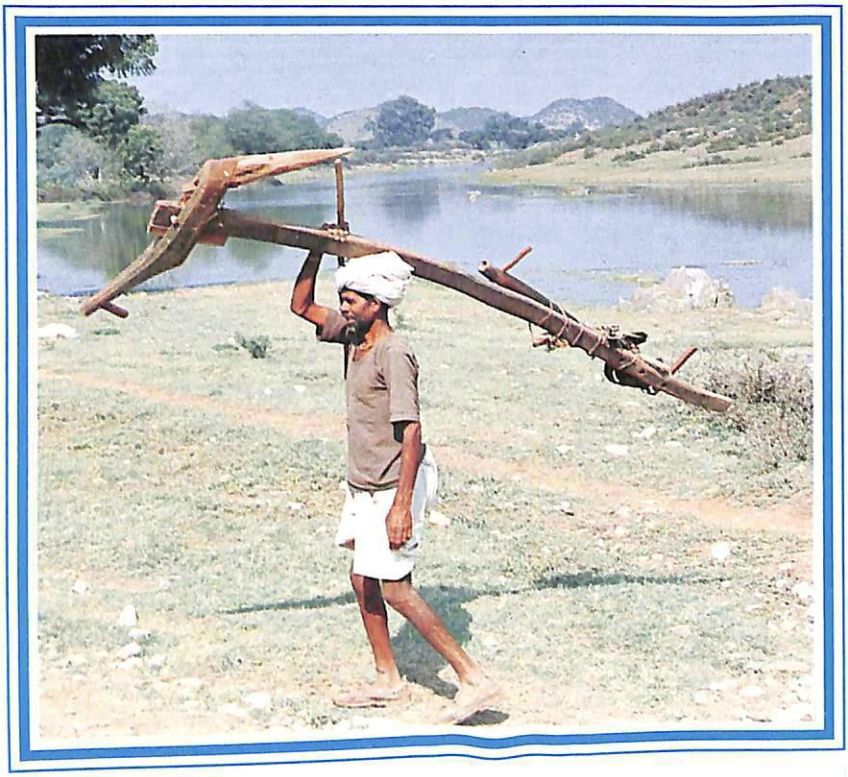

साझे श्रम का कमाल

बाघ की दहाड़ और समाज की खुशहाली

राजेश रवि – जिनेश जैन

तरुण भारत संघ

भीकमपुरा-किशोरी, थानागाजी, अलवर-301 002

साझे
श्रम का कमाल

लेखक : राजेश रवि - जिनेश जैन

संस्करण : मई, 1998

मूल्य : 35/- रुपये मात्र

प्रकाशक : तरुण भारत संघ, भीकमपुरा, अलवर, (राजस्थान)

छायाचित्र : रजनीकांत यादव, राजेन्द्रसिंह, जय नागड़ा व अन्य कार्यकर्त्ता

आवरण : 1. मांडलवास में लहलहाते खेत, पानी व वन्य जीव
2. गाँव में पानी होने से खुशहाल किसान
3. खेती व जंगल की कमी नहीं रही
4. गाँव के जोहड़ में आनन्द उठाते पशु व हरियाली

मुद्रक : कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर

प्रस्तावना

सरिस्का के अन्दर बसे माण्डलवास-मथुरावट गाँव में अक्सर बाघ दिखता था। गाय-भैंस वर्ष भर खूब भरपेट चारा-पानी प्राप्त करती थीं। एक दौर ऐसा आया जब इन्हें अपना पेट भरने तथा पीने के पानी की भी कमी पड़ गई। यह अस्सी का दशक था। सरिस्का का जंगल देश भर में प्रसिद्ध है उसमें जंगल तथा बाघ दोनों ही गायब होने लगे थे। लोग भी पानी-चारे की कमी के कारण अपना गाँव छोड़ने को मजबूर हो गये थे।

उसी दौर में माण्डलवास के लोगों ने गोपालपुरा में मेवालो का जोहड़ देखा, उसके कारण गाँव के कुएँ सजल हो गये थे तो इन्होंने भी अपने गाँव में ऐसा ही एक जोहड़ बनवाना तय किया। सबसे पहले तो ये संगठित हुए और धानका वाला जोहड़ बनाने की पूरी योजना बना ली। बस काम करने वालों को पीने का पानी तथा भोजन की कमी रही, वह इन्होंने तरुण भारत संघ से मांग की तो संघ तैयार हो गया, काम चालू हुआ। काम के दौरान ही एक दिन बरदू ने कहा जोहड़ तो बन जायेगा, लेकिन पानी के साथ कंकर-पत्थर-मिट्टी आयेगी तो यह जल्दी ही गाद से भर जायेगा। इसे रोकने के लिए कुछ करना पड़ेगा। पहाड़ पर जंगल बचाने का कार्य करने का निर्णय यहाँ हो गया। यह सहज निर्णय ऐसा हुआ कि पहाड़ को हरा-भरा बनाने जैसा कठिन कार्य शुरू हो गया। आज इनका पहाड़ हरा-भरा है। गाँव के आस-पास बाघ के दर्शन भी सुलभ हो गये हैं। जंगल में बाघ गाँव के लिए शुभ और लाभदायी है। यह शुभ तो इसलिए है कि बाघ के होने से खेती व पशुओं में बीमारी कम होती है। लाभदायी इसलिए है कि बाघ के रहने से जंगल में पालतू पशुओं के लिए घास-चारा पर्याप्त

सहजता से मिल जाता है इसलिए लोग बाघ की रक्षा करते हैं। शिकारी को अपने जंगल में नहीं आने देते हैं ।

लोगों ने अपनी मेहनत से बहुत से जोहड़/बांध/मेड़बन्दी निर्माण का कार्य किया है। इससे गाँव का आत्म-गौरव, सम्मान, स्वावलम्बन सब कुछ तो बढ़ा ही है। जंगल-जंगली जीवों को बचाने का पुण्य भी इन्होंने ही कमाया है। ये हजारों पक्षियों, सैकड़ों जंगली जीवों को अभय-आश्रय स्थल प्रदान करके दातार बन गये हैं।

जिस जंगलात विभाग के अधिकारी इन्हें अपराधी घोषित कर रहे थे उसी विभाग के तत्कालीन सर्वोच्च अधिकारी श्री वी.डी. शर्मा ने इन्हें पर्यावरण प्रेमी पुरस्कार इनके गाँव में पहुँच कर दिया। राजस्थान के मुख्य सचिव श्री मिट्ठालाल मेहता ने इनके ग्राम संगठन को जल, जंगल, जमीन संरक्षण हेतु सम्मानित किया था। इन सबसे बड़ी बात यह है कि अब जंगलात विभाग के कर्मचारी इस गाँव से दूसरे गाँवों का जंगल बचाने हेतु सहयोग मांगते रहते हैं। इस सफल कहानी को जिनेश जैन व राजेश रवि ने बहुत ही कुशलता से लिखा है। मैं इन दोनों का आभारी हूँ।

माण्डलवास व मथुरावट के सभी महिला-पुरुष, बच्चों को बधाई देता हूँ। इनकी सफलता से दूसरे गाँव भी प्रेरणा लेंगे।

राजेन्द्रसिंह
महामंत्री, तरुण भारत संघ

बदलता सरिस्का

हरा-भरा जंगल और जंगली जीवों का खुला विचरण आज सरिस्का आने वाले लोगों को मानसिक संतुष्टि देता है। यह स्थिति वर्ष 1987 में नहीं थी। वन्यजीवों की कमी, लचर प्रबंधन व जंगलात कर्मचारियों और ग्रामीणों के बीच बिगड़े संबंध ही उस समय के हालात थे। इससे बाघ परियोजना सरिस्का का अस्तित्व खतरे में नजर आता था।

वर्ष 1997 में सरिस्का के जंगल का आकलन किया गया। इमेजरी रिपोर्ट में सरिस्का के जंगल को लेकर आशातीत नतीजे सामने आए। इससे एक बात यह स्पष्ट हुई कि देश-विदेश में मशहूर राजस्थान की यह बाघ परियोजना प्रबंधन की दृष्टि से बेहतर हालत में आ गई है। एक दशक में सरिस्का के हालात सुधारने में केवल नौकरशाहों की भूमिका नहीं रही बल्कि पर्यावरण बचाने में जुटी स्वयंसेवी संस्था तरुण भारत संघ का अहम् योगदान रहा। इस संस्था ने अपने बेहतर अनुभवों के आधार पर सरिस्का को संवारने के लिए काम किए।

तरुण भारत संघ ने वर्ष 1987 में सरिस्का की बिगड़ी स्थिति को देखने के बाद इसे अपने कार्यक्षेत्र में शामिल करने का इरादा बनाया। इसके लिए संस्था की टीम ने सबसे पहले सरिस्का के हालातों को समझा। इस कार्य में दो साल का समय लगा, तब तक संस्था के लोग यह भी समझ गए थे कि सरिस्का के जंगल को उजाड़ने में कौन दोषी रहे हैं। इसके पीछे लचर प्रबंधन मुख्यतौर पर उभरकर सामने आया। प्रबंधन खराब होने की वजह से सरिस्का बाघों का शिकार करने वाले असामाजिक तत्वों की शरणस्थली बन चुका था, जो सरिस्का बाघ परियोजना के लिए अभिशाप था।

तरुण भारत संघ ने सरिस्का के जंगलों को बचाने की मुहिम का कार्य बाघ परियोजना क्षेत्र में बसे गाँवों से शुरू किया। इसके लिए सरिस्का परियोजना क्षेत्र के देवरी, मांडलवास, मथुरावट व उमरी गाँवों को केन्द्र-बिन्दु बनाया गया। संस्था को इन गावों में जंगल और जंगली जीव बचाने के प्रति समझ विकसित करने में समय तो लगा, किन्तु उसके परिणाम तेजी के साथ सामने आए। इन गाँवों में दस्तूर बनाकर गाँव का अपना संगठन खड़ा करने में सफलता हासिल की गई।

सरिस्का के ग्रामीण संस्था के लोगों को पहले सरकार के नुमाइंदे मानकर उनकी बातों को हवा में उड़ाते रहे, लेकिन धीरे-धीरे उनमें विश्वास जागृत हो गया कि ये लोग उनकी भलाई के लिए आए हैं। यह स्वाभाविक भी था कि सरिस्का के ग्रामीणों के जंगलात वालों से कभी रिश्ते मधुर नहीं रहे। ग्रामीण सरिस्का के जंगलकर्मियों को अत्याचार करने एवं धन ऐंठने वालों के गिरोह का सदस्य मानते थे। उन पर भरोसा करना किसी परेशानी में पड़ने के समान था।

दस्तूरों के माध्यम से ग्रामीणों के लिए यह मर्यादा तय की गई कि दीपावली से पहले कोई भी ग्रामीण जंगल में ईंधन एवं घास की कटाई नहीं करेगा। दीपावली के बाद कटाई सिर्फ जरूरत के अनुरूप होगी। दस्तूरों को तोड़ने पर दोषी ग्रामीणों से गाँव का संगठन जुर्माना वसूल करेगा। गाँव के इन दस्तूरों पर जंगलात वालों को कोई एतराज नहीं हो, इसके लिए तरुण भारत संघ ने जंगलात वालों और ग्रामीणों के बीच समन्वयक की भूमिका अदा की।

गाँव के दस्तूरों पर जंगलात वालों ने कोई एतराज नहीं किया। ईंधन एवं घास कटाई का कोई बड़ा केस सामने आता तो जंगलात वाले दोषियों की पहचान के लिए संबन्धित गाँव के संगठन की मदद लेने लगे। इससे ग्रामीण और जंगलात विभाग के बीच बिगड़े रिश्ते सुधरने लगे। कटाई के अलावा अब समस्या सरिस्का में शिकार को लेकर थी। इसके लिए ग्रामीणों ने जंगलातवालों के साथ सरिस्का में शिकार करने वाले लोगों की पहचान की और उन पर अंकुश लगाने के लिए उपाय ढूंढे गए।

चार साल के दौरान वर्ष 1991 तक जंगलकर्मियों एवं ग्रामीणों के बीच सुधरे संबंधों का नतीजा यह सामने आया कि सरिस्का में वन्यजीवों का विचरण स्वच्छंद हो गया और शिकार की घटनाएं रिकार्ड में नगण्य हो गईं। सरिस्का के सरकारी आंकड़ों का अध्ययन किया जाय तो वर्ष 1991 के बाद जंगल में शिकार की घटनाएं लगभग खत्म हो गईं। इससे पहले सरिस्का देश के नक्शे पर बाघों के शिकार के लिए बदनाम हो गया था।

ग्रामीणों का जंगलातकर्मियों पर विश्वास बढ़ने की वजह यह मानी जा सकती है कि दोनों के बीच संवादहीनता को खत्म किया गया। संवाद नहीं होने

जंगल बचाने की पहल

के कारण पहले दोनों स्तर पर एक-दूसरे को समझने के लिए कोई सकारात्मक प्रयास नहीं किए गए। इससे हमेशा कटुता का माहौल छाया रहता था। ग्रामीण यह भी समझने लगे थे कि उनको बाघ परियोजना क्षेत्र से बेदखल किये जाने के लिए सरकारी योजना तैयार की जा रही है। लेकिन संवाद बढ़ने पर इस मामले में ग्रामीणों की काफी हद तक गलतफहमी दूर हुई।

सरिस्का में जंगल बचाने के लिए परम्परागत उपायों पर जोर दिया गया। वर्ष 1988 में तरुण भारत संघ ने ग्रामीणों के सहयोग से सरिस्का में

अखंड रामायण पाठ का आयोजन किया। इसके पीछे मकसद जंगल और जंगली जीवों के संरक्षण का रहा। साथ ही इस भक्ति आयोजन से वनकर्मियों को सद्‌बुद्धि का संदेश दिया गया। सद्‌बुद्धि इस लिहाज से कि वन कर्मचारी सरिस्का को अपनी आमदनी एवं अय्याशी का केन्द्र मानते रहे हैं, उनमें इस आयोजन से कम से कम सुधार आयेगा।

सरिस्का को बचाने के लिए अरावली बचाओ यात्रा का भी आयोजन किया गया। इस यात्रा के जरिए लोगों में अरावली को हरा-भरा करने के प्रति

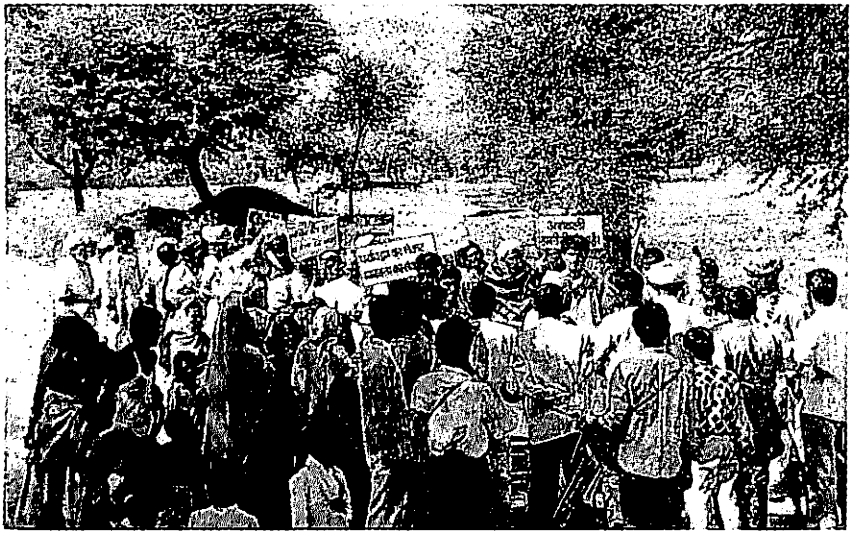

पर्यावरण संकट पर चिंता

चेतना जागृत करने का संदेश प्रचारित किया गया। यह यात्रा गुजरात के हिम्मतनगर से दिल्ली तक पहुंची, जिसका केन्द्र-बिन्दु सरिस्का ही रखा गया। सरिस्का से यात्रा गुजरने के दौरान अरावली बचाने की मुहिम से जुड़े स्थानीय लोगों ने भागीदारी निभाई।

तरुण भारत संघ को सरिस्का के जंगलकर्मियों की मानसिकता में सुधार लाने के लिए जंगल संरक्षण सत्याग्रह भी करना पड़ा। इस सत्याग्रह में सरिस्का के गाँवों में बसे लोगों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया, जिसका सकारात्मक नतीजा

यह सामने आया कि सरिस्का में बसे गाँव-जंगल की अपने घर की तरह रखवाली करने के लिए प्रेरित हुए। अब जंगल ग्रामीणों के उपभोग के लिए नहीं था, बल्कि उसका संरक्षण करना कर्तव्य में शामिल हो गया।

नब्बे के दशक में ग्रामीणों एवं वनकर्मियों के रिश्ते सुधरे और एक दूसरे की मदद के लिए आगे आने लगे तो वर्ष 1995 में साझे रूप में जंगल जीवन बचाओ पदयात्रा की गई। यह पदयात्रा सरिस्का के आस-पास के गाँवों में यह चेतना पैदा करने के लिए थी कि जंगली जानवर उनके दुश्मन नहीं दोस्त हैं। जंगल में उनका रहना वाजिब है। सरिस्का आस-पास के गाँवों की शान है और यह नहीं रहेगा तो उनके पूर्वजों का जंगल बचाने के लिए संजोया गया सपना गर्त में मिल जायेगा। वर्ष 1995 की 14 जनवरी से प्रारंभ हुई यह पदयात्रा दो मार्च तक चली। इस पदयात्रा को नाहरसती से शुरू किया गया, जो देशभर के बाघक्षेत्रों से गुजरी।

सरिस्का का देश-विदेश के नक्शे पर महत्व होने की वजह से इसमें गैर वानिकी गतिविधियों के चलने का भी हमेशा अंदेशा छाया रहा है। सैलानियों

सात सितारा होटल के खिलाफ रामायण पाठ

की भीड़-भाड़ को देखकर देश के एक नामी होटल घराने ने अजबगढ़ में सात सितारा होटल बनाने की योजना पर कार्य किया। इसका गाँव वालों ने न सिर्फ विरोध किया, बल्कि आंदोलन के रूप में लंबा सत्याग्रह चलाया। अजबगढ़ में ग्रामीणों ने होटल के सामने अखण्ड रामायण पाठ कर होटल की प्रस्तावित योजना को रद्द करने का दबाव बनाया। अपने उच्च रसूकों के बूते पर होटल मालिक जन भावनाओं के विपरीत निर्माण कार्य करते रहे।

होटल निर्माण के खिलाफ तरुण भारत संघ ने राजस्थान उच्च न्यायालय में कानूनी लड़ाई का सहारा लिया। संस्था की यह याचिका फिलहाल उच्च न्यायालय में विचाराधीन है। इस मामले में जनभावनाओं की एक सीमा तक कद्र हुई है क्योंकि होटल का निर्माण पिछले छह माह से बंद है। होटल मालिकों को यह आभास तो हो चुका है कि जन विरोध के बीच किसी भी काम को नहीं चलाया जा सकता।

इस होटल का निर्माण अजबगढ़ में ऐसे स्थान पर किया गया, जहां होटल मालिक सरिस्का की हरियाली को व्यावसायिक स्तर पर भुनाने की कोशिश में थे। अजबगढ़ के बांध के किनारे पर बने इस होटल के निर्माण के पीछे बांध के पानी को गलत तरीके से उपयोग करना भी मकसद रहा है। ग्रामीणों का विरोध भी पानी के दुरुपयोग और सरिस्का को अय्याशी का अड्डा बनने से रोकने को लेकर था।

सरिस्का में गैर वानिकी गतिविधियों पर विराम के कार्य में तरुण भारत संघ की सबसे अधिक भूमिका खनन पर रोक को लेकर रही। संस्था ने अदालत के माध्यम से जो कानूनी लड़ाई लड़ी, उसके आधार पर केन्द्र सरकार को पृथक से कानून बनाने के लिए मजबूर होना पड़ा। प्रतिबंधित वन क्षेत्रों में गैर वानिकी गतिविधियों पर देशभर में रोक लगाने के लिए लड़ी गई लड़ाई की शुरुआत सरिस्का से मानी जाए तो कोई ताज्जुब नहीं होगा।

वर्ष 1990 में सरिस्का के जंगलों में होने वाले खनन कार्य को रोकने के लिए संस्था ने उच्चतम न्यायालय में शरण ली। यह स्थिति उस समय बनी,

जब संस्था इस मामले में सरकार से गुहार करते-करते थक चुकी थी। राज्य सरकार खनन कार्य की बदौलत मिलने वाले राजस्व से प्रभावित रही। इसके साथ उस पर खनन कार्य में जुटे प्रभावशाली लोगों का दबाव था। इस सरकारी तौर-तरीकों के बीच संस्था को अदालत का दरवाजा खटखटाना ही वाजिब तरीका लगा।

संस्था की याचिका पर ग्यारह अक्टूबर 1991 को उस समय सकारात्मक निर्णय हुआ, जब उच्चतम न्यायालय ने सरिस्का बाघ परियोजना में चल रहे खनन कार्य को रोकने के आदेश दिए। इस आदेश की अनुपालना में आठ अप्रैल 93 को सरिस्का में खनन में जुटी 470 छोटी-बड़ी खदानों के संचालन पर रोक लगा दी गई। यह सर्वविदित था कि सरिस्का में खनन कार्य होने से जंगल और जंगली जीवों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया था। खनन के धमाकों से जहां जंगली जानवरों का जीवन अशांत हो रहा था, वहीं जंगल पर धूल की परतें छा रही थीं। इसे इस तरह समझा जा सकता है कि सरिस्का में जंगल और वन्य जीवन तेजी के साथ सिमट रहा था।

अदालती आदेश का सरकारी स्तर पर इतना दबाव पड़ा कि केन्द्र ने एक आदेश जारी कर प्रतिबंधित वन क्षेत्र के आस-पास पांच किमी परिधि में किसी भी तरह की गैर वानिकी गतिविधियों पर पाबंदी लगा दी। आज सरिस्का के आस-पास गाँवों पर नजर दौड़ाई जाए तो यह साफ जाहिर होता है कि खनन कार्य बंद होने से जीवन शांत हुआ है। खनन बंद होने के बाद तरुण भारत संघ ने प्रभावित क्षेत्रों में वृक्षारोपण का जो अभियान छेड़ा, उससे सरिस्का का जंगल हरा-भरा होने लगा है। इस कार्य में सरिस्का के अफसरों की प्रतिबद्धता भी सराहनीय रही है।

सरिस्का में जल संरक्षण को लेकर भी काफी कार्य हुए हैं। तरुण भारत संघ का यह फार्मूला रहा है कि जल होगा तो सब कुछ अच्छा रहेगा। वर्ष 1987 तक सरिस्का बाघ परियोजना अकाल की चपेट में रही है। सूखे नदी-नाले और पानी के स्रोतों की कमी सरिस्का के विकास में बाधक बनी रही है।

संस्था ने अपने अध्ययन में जल के संकट को सरिस्का के लिए अधिक खतरनाक माना। जंगल और जंगली जीवों का अस्तित्व जल पर आधारित रहता है।

सरिस्का परियोजना क्षेत्र में संस्था द्वारा जल संरक्षण के लिए तैयार की गई करीब दो सौ रचनाएं काफी लाभदायक साबित हुई हैं। सरिस्का क्षेत्र से गुजरने वाले नाहरसती, नाहरमाला, भगानीवाली, जहाजवाली नदी व आलग्वाल नाले इन जल रचनाओं के बदौलत आज पानी से लबालब हैं। इन नदी व नालों में पानी आने के बाद अलवर जिले से निकलने वाली रूपारेल नदी की तकदीर बदल गई है। यह नदी अब बारह मास सजल रहती है।

सालभर पानी रहने का असर यह दिखाई देता है कि सरिस्का के वन्य जीवों के लिए पानी की सुलभता बढ़ी है। आस-पास पानी मिलने के बाद सरिस्का में वन्यजीवों के इधर-उधर भटकने पर रोक लगी है। इससे वन्य जीवों के शिकार के इंतजार में रहने वाले लोगों के मंसूबों पर पानी फिरा है।

जल, जंगल और जंगली जीवों के लिए किए गए सकारात्मक प्रयासों के बीच सरिस्का के सरकारी प्रबंधन में भी सुधार आया है। ग्रामीणों के सजग होने के बाद जंगलातवालों ने अपने नौकरशाही रवैये में न केवल सुधार किया है, अपितु जंगल की व्यवस्थाओं में समय के साथ बदलाव किया है। सरिस्का में बाघ-बघेरों को दिखाने के लिए सर्च लाइट के साथ रात्रि भ्रमण की व्यवस्था को बंद किया गया है।

सैलानियों को रात में घुमाने की आड़ में शिकारियों को पैर जमाने के अंदेशे से इंकार नहीं किया जा सकता। रात को सैलानी सरिस्का के कोर क्षेत्र में भ्रमण करेंगे तो निश्चित तौर पर शिकारियों की घुसपैठ को रोकना भी संभव नहीं होगा। इस स्थिति को समझकर सरिस्का में रात के भ्रमण पर रोक लगाई गई। इससे जंगली जीवों को शांत माहौल उपलब्ध होने के साथ शिकारियों की गतिविधियों पर अंकुश लगाने में मदद मिली है।

गाँववालों के सहयोग से जंगल और वन्य जीवों की व्यवस्था में आए बदलाव के बावजूद आज भी सरिस्का के अस्तित्व पर संकट मंडराए हुए हैं। यह संकट सिर्फ सरिस्का के कोर क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है, बल्कि आस-पास क्षेत्रों में बढ़ रहे मानवीय दबाव एवं गैर वानिकी गतिविधियों को लेकर है। सरिस्का की दुखदायी स्थिति यह रही है कि इस बाघ परियोजना को सरकारी एवं गैर-सरकारी स्तर पर ज्यादा गंभीरता से नहीं लिया गया है।

सरिस्का के कोर क्षेत्र में सैलानियों को भ्रमण की इजाजत जंगल के लिए अभिशाप बनकर उभरी है। सरिस्का में भ्रमण के लिए आने वाला सैलानी पारिस्थितिकी ज्ञान के बजाय मौज-मस्ती के मकसद को अधिक प्राथमिकता देता है। वाहनों का अनियंत्रित धुआं और सैलानियों का दबाव सरिस्का के शांत वातावरण को दूषित करता है। सैलानियों में भ्रमण के दौरान अनुशासन की काफी कमी रहती है।

सरिस्का में सैलानियों द्वारा वन्यजीवों को खाद्य पदार्थ डालने के 'पुण्य' ने कई तरह की बीमारियों को बढ़ावा दिया है। ब्रेड आदि खाद्य सामग्री के उपभोग से वन्यजीवों का भला तो कम हुआ है, लेकिन उनके साथ पालिथीन पेट में जाने से शाकाहार प्रवृत्ति के जानवरों में टी.बी. जैसी खतरनाक बीमारी जन्मी है। इन शाकाहारी जानवरों में बीमारियां बढ़ने के साथ उनसे सरिस्का के बाघ-बघेरे भी प्रभावित हुए हैं। बाघ-बघेरों में टी.बी. की बीमारी के लक्षण पाये जाने के बाद सरिस्का के वन्यजीवों का अस्तित्व बचाना जरूरी हो गया है। वन्यजीवों को खाद्य पदार्थ डालने पर रोक आवश्यक है।

सरिस्का में सैलानियों के भ्रमण के दौरान सरकारी स्तर पर इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि उनमें अनुशासनहीनता बढ़ नहीं पाए। सैलानियों की मानसिकता को सरिस्का के पारिस्थितिकी ज्ञान तक सीमित रखा जाना चाहिए न कि मौज-मस्ती के लिए बढ़ावा मिलना चाहिए। सरिस्का के शांत वातावरण को बरकरार रखने के लिए सैलानियों में अनुशासन होना जरूरी है।

सरिस्का के जंगल और जंगली जीवों के लिए वर्तमान में जो स्थितियां खतरनाक बनकर उभरी हैं उसमें व्यावसायिक मानसिकता भी एक बड़ा हिस्सा है। सरिस्का में सैलानियों के बढ़ते आकर्षण को देखकर बाघ परियोजना के सड़क मार्ग पर तेजी के साथ ढाबे बढ़े हैं। इन ढाबों के संचालन के पीछे धन कमाने की मानसिकता रही है। राज्य सरकार द्वारा थानागाजी के समीप औद्योगिक क्षेत्र विकसित करने के फैसले ने सरिस्का के लिए दिक्कतें बढ़ाई हैं। इस औद्योगिक क्षेत्र के विकसित होने के बाद प्रदूषण के लिहाज से सरिस्का निश्चित तौर पर प्रभावित होगा।

सरिस्का के जंगलों के आस-पास बढ़ते अतिक्रमणों से वन्यजीवों एवं जंगल पर प्रतिकूल प्रभाव बढ़ा है। घुमन्तू लोगों का पड़ाव और नये गाँवों की स्थापना पर नियंत्रण के लिए सरकारी स्तर पर ठोस कार्य नहीं हो सका है। सरिस्का को सुरक्षित रखने के लिए ऐसी गतिविधियों को रोकना जरूरी है।

सरिस्का के जंगल और वन्य जीवों की सुरक्षा में जो सबसे बड़ी कमी अखरती है, उसमें बाघ परियोजना के कोर क्षेत्र के चारों तरफ दीवार नहीं बनना भी शामिल है। सरिस्का के अस्तित्व को बचाने के लिए इसके चारों तरफ दीवार बनाना होगा। हालांकि सरकारी स्तर पर इस कार्य को खर्चीला एवं क्षमताओं से बाहर मानते हैं, किन्तु वन्यजीवों के महत्व को देखते हुए यह कार्य आवश्यक है।

खामियों के बावजूद गाँव वालों के सहयोग से सरिस्का में अब तक बदलावों के बाद यह जरूर कहा जा सकता है कि स्थानीय स्तर पर जंगल और जंगलीजीवों के प्रति चेतना बढ़ी है। इसका प्रभाव यह हुआ है कि सरिस्का में वर्ष 1990 के बाद काफी तादाद में वन्यजीव नजर आने लगे हैं। बाघ-बघेरों के दर्शन अब सामान्य रूप से होने लगे हैं।

सरिस्का की स्थिति सुधरने से यहां आने वाले सैलानियों की संख्या में भी बढ़ोतरी हुई है। पर्यटकों के बढ़ने से लोगों के रोजगार के अवसर बढ़े हैं। साथ ही जंगल की बेहतर स्थिति से सरिस्का के गाँवों में रहने वाले लोगों के

मवेशियों में दूध क्षमता बढ़ी है। इसका सीधा असर गाँव वालों के आर्थिक संसाधनों पर पड़ा है। सरिस्का के गाँवों में रहने वाले नानकराम, जगदीश, रामदयाल, भगवान सहाय व गिर्राज प्रसाद ऐसे लोग हैं, जो आज जंगल और जंगली जीवों की संख्या में आए सुधार तथा अपनी सम्पन्नता को देखकर फूले नहीं समाते।

तरुण भारत संघ के जी-तोड़ प्रयासों से गाँव वालों में असमंजस की यह स्थिति हद तक खत्म हुई है कि उन्हें सरकारी लोग जंगल से खदेड़ देंगे। यह चेतना बनी है कि अगर विस्थापन की कोई योजना लागू होगी तो उसमें उनकी राय को महत्व दिया जायेगा।

सरिस्का के लोग तथा देश के जाने-माने पर्यावरणविद् कर्नाटक के एस.एस. आर हीरेमठ, महाराष्ट्र के अजय व योगिनी ढोलके, नेपाल की रुचि पंत, पर्यावरण व मानव अधिकार ट्रिब्यून मुंबई की दीपिका, दिल्ली के फरहाद वानियां व स्वाति मिलकर सरिस्का को सुधारने की चर्चा करते हुए

मांडलवास

देश-विदेश में मशहूर बाघ परियोजना सरिस्का के बफर क्षेत्र में बसा है गाँव मांडलवास। तीन तरफ सरिस्का की वन भूमि है। एक हिस्से में गाँव की भूमि आती है। मांडलवास पूरी तरह अरावली पर्वत शृंखला की ढालूनुमा पहाड़ियों से घिरा हुआ है। यहां पहुँचने के लिए कोई पक्की सड़क नहीं है, बल्कि जिला मुख्यालय से गाँव में जाने के लिए पहले अलवर से राजगढ़ और राजगढ़ से टहला उतरा जाता है। टहला से एप्रोच रोड मांडलवास तक है, जो कच्चा है। अलवर से दक्षिण में बसे मांडलवास की दूरी करीब 70 किमी बैठती है।

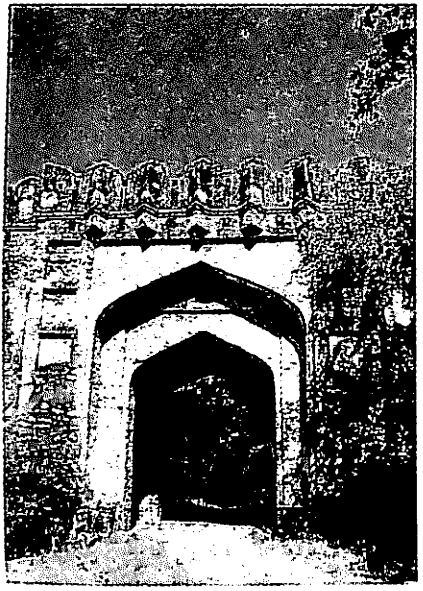

असावरी गेट - यहीं से जाना पड़ता है मांडलवास को .

मांडलवास के लोगों को पक्की सड़क पकड़ने के लिए पूर्व में करीब 15 किमी और पश्चिम में लगभग 12 किमी का पैदल सफर करना पड़ता है। यह सफर पहाड़ों को लांघकर तय करना होता है, जो गाँव के लोगों के लिए मुश्किल नहीं है। गाँव का जीवन आदिवासी तरीके का है, जिनकी आवश्यकताएं बहुत सीमित हैं और उनकी रंग-बिरंगी दुनिया से ज्यादा वास्ता नहीं रहता है।

मांडलवास के पश्चिम में थानागाजी तहसील का गोपालपुरा व

किशोरी है। पूर्व में दबकन व टहला, उत्तर में कांकवाड़ी और दक्षिण में गढ़ नीलकंठ। आमतौर पर गाँव में कच्चे मकान बने हुए हैं। कुछ लोगों ने पक्के घर भी बनाए हैं। गाँव का कुल क्षेत्रफल 24 हजार 665 बीघा का है, जिसमें चारागाह का रकबा पांच सौ बीघा का है। यहां 1800 बीघा भूमि ही सिंचित है। बारानी भूमि करीब 2500 बीघा है और पांच सौ बीघा गोचर भूमि है। गोचर भूमि में से सरकार ने वर्ष 1975-76 में 50 बीघा जमीन भूमिहीनों को आवंटित कर दी थी। बाकी 450 बीघा गोचर भूमि है। इसमें करीब 20 बीघा भूमि पर अतिक्रमण है।

गाँव की भौगोलिक स्थिति पहाड़ी होने के कारण अधिकांश भूमि का हिस्सा ढालू है। मिट्टी का स्वभाव काली या दामणी (पीली) है। गाँव के पूर्व-उत्तर में जरूर समतल भूमि है, किन्तु वह चारागाह में आती है।

बसावट

मांडलवास की बसावट करीब साढ़े चार सौ वर्ष पुरानी मानी जाती है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बारे में गाँव वालों को इतनी जानकारी है कि राजचंद नामक व्यक्ति के नाम पर पड़ौस के गाँव राजौरगढ़ का नाम पड़ा और मांडलवास की पहाड़ियों की आकृतियां माडलनुमा होने के कारण इसे मांडलवास नाम से पुकारा जाने लगा है।

पहले यहां गुर्जर जाति के लोग निवास करते थे, किन्तु किसी कारण वे गाँव छोड़ गए। इसके बाद मीणा जाति के लोगों ने मांडलवास को बसाया। गाँव में मीणा जाति के चार गौत्र के लोग रहते हैं। यहां अनुसूचित जाति के कुछ परिवार भी बसे हुए हैं। गाँव में कुल परिवारों की संख्या 62 है, जिनकी आबादी 655 है।

मांडलवास के लोगों की जीविका पशुपालन और खेती पर निर्भर है। अध्ययन किया जाए तो गाँव के प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में औसतन 1-1.5 हैक्टर भूमि आती है। पशुधन में गाँव में करीब सौ गाय, तीन सौ भैंस एवं पाँच सौ बकरियाँ हैं। गाँव की आर्थिक स्थिति लोगों के भरण-पोषण

तक सीमित है। जितनी गाँव में लोग कमाई करते हैं, उतनी ही उनके घरों में खपत हो जाती है।

गाँव पूरी तरह सुविधाहीन है। न कोई बस सेवा है और न ही बिजली की सप्लाई। संभवत: सरिस्का के संरक्षित क्षेत्र में यह गाँव होने के कारण यहां ऐसी सुविधाएं मांगना या जुटाना सरकार की तरफ से वर्जित है। गाँव में घरेलू आवश्यकता के सामान की खरीददारी के लिए भी कोई बाजार नहीं है। लोगों को खरीददारी के लिए पैदल ही 10-15 किमी का सफर तय कर टहला या किशोरी जाना पड़ता है।

वर्ष 1987 में स्वयंसेवी संस्था तरुण भारत संघ ने गाँव में एक प्राथमिक विद्यालय एवं एक चिकित्सालय खोला। पड़ौस के गाँव राजौरगढ़ में एक मिडिल स्कूल तो है, किन्तु उसमें अध्यापक नहीं आते। गाँव वालों का कहना है कि अध्यापकों को परेशानी सड़क या बस सेवा की है । इसके बिना वह मांडलवास को कालापानी मानते हैं।

हमने अकाल देखा

वर्ष 1987 में जब तरुण भारत संघ ने मांडलवास को अपना कार्यक्षेत्र बनाने का मानस तैयार किया, उस समय गाँव के आज जैसे हालात नहीं थे। आज तो इस गाँव में लहलहाते खेत, पानी की पर्याप्त उपलब्धता और जंगल को बचाने की समझ काफी विकसित हो चुकी है, किन्तु उस समय इन सब बातों का अभाव था।

वर्ष 1985 के बाद चार साल के अकाल (सूखा) ने मांडलवास को कहीं का नहीं छोड़ा। स्थिति बदतर हो गई थी और अच्छी जमीनें अनुपजाऊ बन गईं। दो तीन कुओं को छोड़कर अधिकतर कुएँ सूख चुके थे। मवेशियों के लिए भूखे-प्यासे मरने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा था। उनके मालिकों ने भगवान भरोसे छोड़ दिया था।

जब गाँव में भरण-पोषण का संकट पैदा होने लगा तो लोग मांडलवास

अकाल से पीछा छूटा, अब खेती में मस्त ग्रामीण

छोड़कर मेहनत-मजदूरी के लिए दिल्ली एवं अहमदाबाद की तरफ पलायन करने लगे। ऐसी स्थिति में मांडलवास के चार साल भुखमरी के बीच गुजरे और गाँव वालों को इस संकट से बचने के लिए कोई रास्ता नहीं सूझने लगा।

मांडलवास के कुछ जागरूक लोग इस विपदा से छुटकारा पाने के लिए ऐसे रास्ते की तलाश करने में जुटे, जिसका फायदा अगली पीढ़ियों तक मिले, क्योंकि गाँव में विपदा का यह पहला दौर नहीं था। जब भी इन्द्रदेवता नाराजगी जाहिर करने लगता, तब-तब मांडलवास संकट के दौर से गुजरने लगता। ऐसे समय में जागरूक लोगों का आगे आना जरूरी था। घाटीपार के पड़ौसी गाँव गोपालपुरा में तरुण भारत संघ के सकारात्मक कार्यों को देखकर मांडलवास के लोगों ने संस्था से अपने गाँव में सहयोग करने की इच्छा जाहिर की।

तरुण भारत संघ वर्ष 1987 में मांडलवास में आ चुका था। उस समय गाँव में केवल एक पुराना जोहड़ व एक छोटी सी पक्की मेड़बंदी थी, जो रख-रखाव के अभाव में बेकार हो चुकी थी। पानी का अधिकतर भाग बहकर नालों से गाँव के बाहर चला जाता था। गाँव की इस बदहाली में वहां से पलायन हो

अब चारे की कोई कमी नहीं रही

चुके जनसमूह को वापस लाकर काम करना तरुण भारत संघ के लिए चुनौती भरा था।

संस्था के सचिव राजेन्द्र सिंह ने इन विषम परिस्थितियों के बावजूद मांडलवास को अकाल से सदा के लिए छुटकारा दिलाने की ठान ली; यह सोचकर प्रयास किया जाए तो कोई भी काम मुश्किल नहीं रहता। अध्ययन यह बताता था कि गाँव में जनसहयोग लेने के लिए मुश्किल भरे दो काम पूरे करने होंगे। गाँव के अधिकांश परिवार रोजी-रोटी के लिए बाहर गए हुए थे और उनको खरीफ की फसल बोने एवं काटने के लिए काफी कम समय के लिए लौटना होता था। इस दौरान उनके बीच सलाह-मशविरा कर जोहड़ निर्माण के लिए विश्वास जीतना जरूरी था। कार्य भी फसल काटने के बाद शुरू हो सकता था, फिर जन सहयोग के लिए उनके 6-8 माह के पूर्ववर्ती वेतन को समाविष्ट करना था। इसके अभाव में संस्था द्वारा किसी योजना पर काम को अंजाम देना कठिन हो सकता था।

संस्था सचिव राजेन्द्र सिंह अध्ययन से यह भी जान चुके थे कि वर्ष 1975 में मांडलवास में सरकारी स्तर पर बनाये गए चैकडेम की हालत सही नहीं थी। गाँव वाले बता चुके थे कि बार-बार संबन्धित विभाग को रिमाइन्डर भेजने के बावजूद चैकडेम की कोई सुध नहीं ली गई। इससे गाँव वालों के दिलोदिमाग पर सरकार की कार्यशैली को लेकर असंतोष की भावना पैठ बना चुकी थी। ऐसा ही अविश्वास संस्था को लेकर भी बना हुआ था। फिर भी तरुण भारत संघ ने अपनी धरातल की सोच के आधार पर गाँव के बुजुर्गों के बीच जाने का मन बनाया। उनसे जोहड़ बनाने की गाँव की पुरानी परम्पराओं पर चर्चा की गई। गाँव के कुछ युवा लोगों को गोपालपुरा ले जाकर वहां संस्था द्वारा बनाए गए जोहड़ों की कार्यपद्धति से रू-ब-रू कराया गया। संस्था की यह शैली गाँव को विश्वास में लेकर उनके सहयोग से पानी के लिए काम शुरू करने की थी। संस्था में इसे जन शिक्षण का कार्य माना जाता है। राजेन्द्रसिंह और संस्था के कार्यकर्ता सप्ताह में दो बार गाँव आते और जोहड़ों को लेकर गाँव वालों से व्यापक चर्चा करते। गाँव में सबसे पहली समस्या लोगों और उनके मवेशियों के लिए पीने के पानी की थी।

तरुण भारत संघ और मांडलवास के बीच संवाद का जो क्रम प्रारंभ हुआ, उसका नतीजा सकारात्मक आने लगा। इन उम्मीदों के बीच संस्था ने गाँव में कार्यों को अंजाम देने के लिए लोगों को एक जाजम पर बैठाकर उनकी ग्राम सभा के गठन की प्रथम औपचारिकता पूरी की। गाँव में आम सहमति के आधार पर बीस सदस्यों वाली ग्रामसभा बनाई गई। दो महिलाओं समेत अधिकांश सदस्य बड़ी उम्र के थे।

अपना संगठन

मांडलवास में जोहड़ों के लिए वास्तविक कार्य ग्राम सभा बनने के छह माह बाद शुरू हुआ। कार्य प्रारंभ होने से पहले संगठन को मजबूत बनाने के मकसद से गाँव के सभी परिवारों को गतिमय बनाने की प्रक्रिया पूरी की गई। ग्रामसभा एक साधारण बॉडी होती है, जिसमें प्रत्येक परिवार की हिस्सेदारी आवश्यक है। फसल काटने के मौसम को छोड़कर शेष समय में माह में दो बार ग्राम सभा की बैठक आवश्यक रखी गई । साथ ही यह तय किया गया कि आवश्यकता पड़ने पर फसल पकने के मौसम में भी ग्राम सभा की बैठक बुलाई जा सकती है।

तरुण भारत संघ की कार्यशैली के अनुरूप मांडलवास की ग्राम सभा में यह व्यवस्था की गई कि प्रबंध के लिए कोई एक नेता या समूह नहीं होगा बल्कि संगठन के कार्यों में सभी परिवार हिस्सा लेंगे और किसी भी मुद्दे पर बहुमत होना आवश्यक होगा। ग्राम सभा को सशक्त बनाने के लिए यह प्रावधान किया गया कि गाँव के संसाधनों को बचाने के लिए कानून एवं नियम बनाए जाएं जिनका समूचा गाँव पालन करे। परिधि से बाहर निकलकर काम करने वालों पर दंड का प्रावधान किया गया। ग्राम सभा का दायरा आपसी संघर्षों के निपटारे के लिए भी तय किया गया।

मांडलवास की बदहाल तस्वीर को बदलने के लिए सबसे पहले गाँव के जलतंत्र को मजबूत करना जरूरी था, क्योंकि जल होगा तो जंगल और जमीन भी समृद्ध होंगे। इसका सीधा प्रभाव गाँव की उत्पादकता और आर्थिक सम्बलता पर नजर आता है। ग्रामसभा के माध्यम से पहला कार्य गाँव में जोहड़

निर्माण का होना था । इसके लिए समूचे गाँव को एक जाजम पर बैठाकर व्यूह-रचना तैयार की गई।

जोहड़ के वास्तविक निर्माण से पहले ग्रामसभा में जोहड़ के लिए उचित स्थान की तलाश, मिट्टी की किस्म, एकत्र पानी का संभावित उपभोग, जलग्रहण और प्राप्त होने वाले लाभों पर व्यापक चर्चा की गई। इन सब कामों में तरुण भारत संघ का अनुभव से भरा मार्गदर्शन केन्द्रित किया गया। ग्राम सभा ने गाँववाला जोहड़ को अपनी कार्यसूची का पहला कार्य चुना।

जोहड़ों की शृंखला में गाँववाला जोहड़ का निर्माण वर्ष 1987 से 89 के बीच हुआ। इसके लिए गाँव का वह पुराना स्थान चुना गया, जहाँ पहले जोहड़ तो था, किन्तु मरम्मत के अभाव में वह अनुपयोगी हो गया था। इस जोहड़ पर निर्माण लागत 36 हजार रुपये आई, जिसमें तरुण भारत संघ की सहयोग राशि 27 हजार रुपये थी। इसके अलावा 9 हजार रुपये गाँव का सहयोग था। इस जोहड़ की भराव क्षमता ढाई हैक्टर क्षेत्र में थी। गाँववाला जोहड़ का निर्माण इस भूमिका के आधार पर किया गया, जिसका उपयोग समूचा गाँव कर सके।

जोहड़ के लिये हाड़तोड़ मेहनत

वर्ष 1987 में जब इस जोहड़ के निर्माण पर गाँव की आशातीत मदद मिली तो उसी साल धानकावाला जोहड़ के निर्माण का भी बीड़ा उठा लिया गया। यह जोहड़ भी पुराने स्थान पर बनाया जाना प्रस्तावित किया, जहां कभी जोहड़ बना हुआ था। कालान्तर में यह जोहड़ भी अनुपयोगी हो गया था। इस जोहड़ पर 33 हजार रुपये लागत आई। इसमें तरुण भारत संघ ने 25 हजार रुपये का सहयोग दिया, जबकि गाँव का आर्थिक सहयोग 8 हजार रुपये का रहा। इस जोहड़ की भराव क्षमता 3.8 हैक्टेयर थी और पुनः सिंचन क्षेत्र 8.8 हैक्टेयर माना गया। धानकावाला जोहड़ से लाभान्वित परिवारों की संख्या अधिकतम आंकी गई।

इन दो बड़े जोहड़ों के साथ छोटे जोहड़ों के निर्माण की शृंखला तैयार करने का सिलसिला जारी रखा गया। वर्ष 1987-88 में 0.8 हैक्टेयर भराव क्षेत्र का लाम्बावाला जोहड़ बनाया गया। इस जोहड़ पर आठ हजार रुपये खर्च किए गए, जिसमें गाँव और संस्था का बराबर सहयोग रहा। 1989-90 में नवाकुआवाला और सरसावाला जोहड़ का भी निर्माण कार्य किया गया। दस

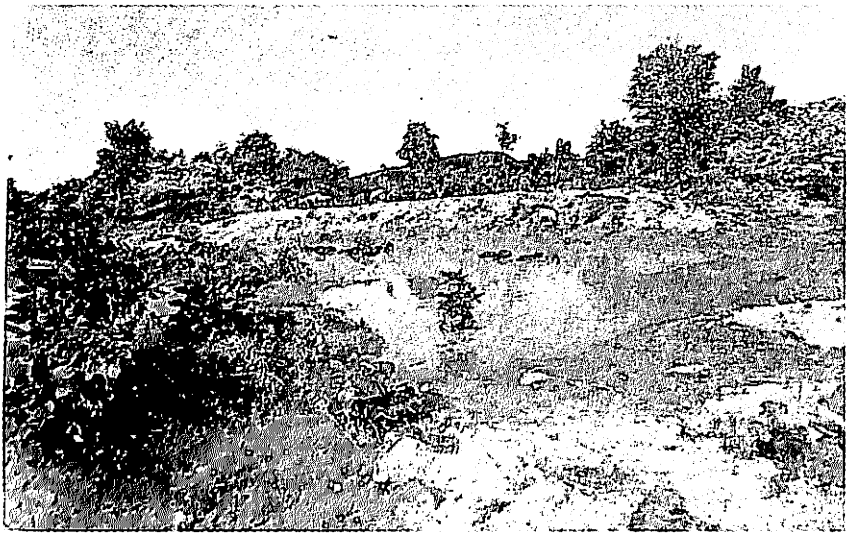

नये साल में बादल फिर घिरे, पर पानी पिछला भी खड़ा है

हजार रुपये की लागत से निर्मित नवाकुआवाला जोहड़ से 40 परिवार लाभान्वित होने थे जबकि बीस हजार रुपये की लागत से बनाए गए सरसावाला जोहड़ से पांच परिवारों के लाभान्वित होने का लक्ष्य तय किया गया। नवाकुआवाला जोहड़ की भराव क्षमता 1.3 हैक्टेयर एवं सरसावाला जोहड़ की भराव क्षमता एक हैक्टेयर रखी गई।

वर्ष 1990 तंक मांडलवास में पांच जोहड़ बनाए गए। इन जोहड़ों का निर्माण इस आधार पर किया गया कि उनमें बरसाती पानी एकत्र हो सके। ये जोहड़ शृंखला में बनाए गए। जल एक जोहड़ में भर जाने के बाद वह ऊपर से बहकर दूसरे जोहड़ में चला जाए। इस तरह गाँव का पानी गाँव में ही रह सके।

जलतंत्र का प्रबंधन

मांडलवास में सभी परिवारों के उपयोग के लिए केवल एक जोहड़ (गाँववाला) ही है, इसकी मानसून से पहले प्रत्येक वर्ष मरम्मत की जाती है। जहां आवश्यकता हो, मिट्टी भरी जाती है, क्योंकि गाँव के पशु इसके ऊपर से चलकर पहाड़ी पार चरने जाते हैं। सभी लोगों द्वारा इच्छा के अनुरूप श्रमदान किया जाता है। यह जोहड़ गाँव के लिए महत्वपूर्ण है और गाँव की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

इसके अलावा अन्य जोहड़ केवल 5-6 परिवारों के लिए उपयोगी है, इसलिए रखरखाव की जिम्मेदारी भी उन्हीं के द्वारा पूरी की जाती है । ऐसे में जब वे इन जोहड़ों का प्रबंध नहीं कर पाते, तब ग्रामसभा में उनके रखरखाव का फैसला किया जाता है। इसमें यह तय किया जाता है कि कौन-कौन लोग स्वैच्छिक आधार पर इसमें मदद कर सकते हैं। धन उपलब्ध नहीं कराये जाने की स्थिति में ग्रामसभा से धन के लिए सिफारिश की जाती है। जोहड़ में कितना पानी एकत्र हो चुका है। इस बात को ध्यान में रखकर ही फैसला किया जाता है कि कितनी भूमि पर खेती बोई जाए। इसके अनुरूप ही परिवारों के मध्य पानी का बराबरी के आधार पर बंटवारा किया जाता है।

अब पानी घर के पास वाले कुएं में भी है

शायद कभी ऐसा मौका आया हो, जब पानी के उपयोग या जोहड़ के रखरखाव पर संघर्ष की नौबत आई। जल ग्रहण क्षेत्र में जानवरों के प्रवेश को रोकने के लिए पत्थरों को सटाकर घेरा बनाया गया है। इससे जोहड़ों की सुरक्षा को लेकर अनावश्यक परेशानी से बचा जा सकता है। मांडलवास में आपसी तालमेल के पीछे समान समूह के लोगों का होना भी कारण माना जा सकता है सभी गाँव वाले मीणा जाति के होने के साथ उनकी बराबर जमीन भी है। पीने के पानी की समस्या, कम पैदावार और गरीबी सभी के लिए एक जैसी है। जोहड़ इन सब समस्याओं का समाधान करते हैं।

मांडलवास में जल-तंत्र का प्रबंधन बेहतर होने के पीछे एक कारण यह भी रहा कि जोहड़ निर्माण एवं उसके रखरखाव में साधारण तकनीक का इस्तेमाल किया गया। आवश्यक सामान, कुशलता और परिश्रम, जिनकी जोहड़ बनाने में जरूरत होती है, वह स्थानीय स्तर पर प्राप्त हो जाते हैं। जोहड़ बनाने में शुरुआती आर्थिक और यांत्रिकी मदद का गाँव वाले स्वयं ही बड़े पैमाने पर प्रबंध कर लेते हैं। इसके साथ जोहड़ निर्माण में पारम्परिक तंत्र का इस्तेमाल किया गया, जिससे गाँव के अधिकांश लोग पूर्णरूपेण परिचित हैं।

मांडलवास का अध्ययन करने के बाद यह दावा किया जा सकता है कि इस गाँव में जोहड़ निर्माण को लेकर ग्रामीणों में जो समझ विकसित हुई, उससे अन्य गाँवों के लोग बहुत कुछ सीख सकते हैं। विश्वास का संचार अपने संसाधनों को बचाने की समझ और उनका बेहतर प्रबंध गाँव के स्वावलम्बी होने की तस्वीर साफ जाहिर करता है।

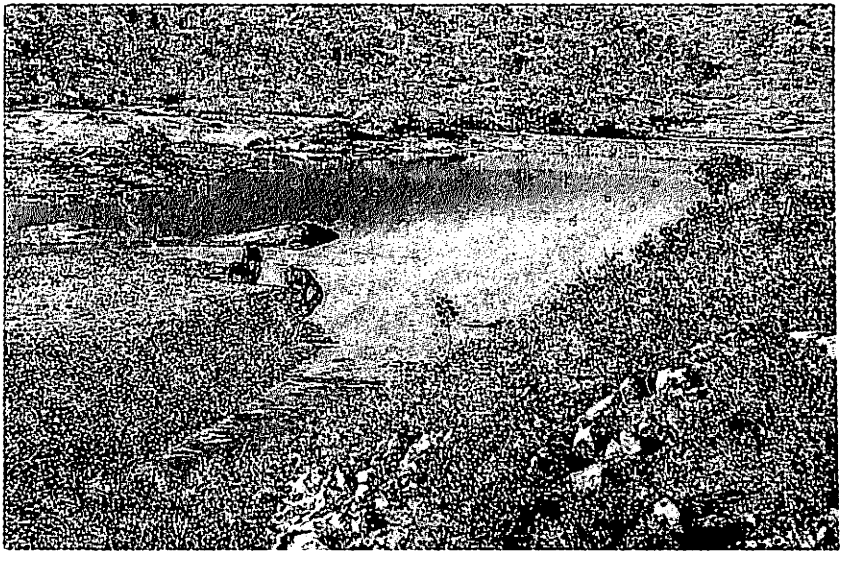

पशुओं के लिये भी पानी की कमी नहीं

सपने साकार हो उठे

मांडलवास में जोहड़ बनाने के लिए गाँव वालों ने जो हाड़तोड़ मेहनत की, उसके सकारात्मक नतीजे वर्ष 1989 में देखे गए। दो वर्ष का कठिन परिश्रम गाँव वालों के लिए खुशियां लेकर आया और गाँव के सपने एक के बाद एक साकार होने लगे। जो कुएँ पहले पानी के लिए तरसते थे, वे सजल हो गए। खेतों में हरियाली छा गई और लोगों का स्तर ऊंचा उठने लगा। ऐसा महसूस किया गया कि गाँव के बुरे दिन अब सदा के लिए दूर हो गए और जो लोग रोजगार की तलाश में गाँव छोड़कर चले गए थे, उनकी तेजी के साथ वापसी हुई। अब केवल दो व्यक्ति इसलिए बाहर हैं कि उन्होंने शहर में ही जीवन गुजारना अपना मकसद बना लिया है। गाँव की खुशहाली को इस तरह समझा जा सकता है।

जल संरक्षण को लेकर मांडलवास में किए गए प्रयासों के बीच जोहड़ों के निर्माण के साथ लोगों में उनके बेहतर रखरखाव की अच्छी समझ भी विकसित हुई। इस समझ में तरुण भारत संघ के ज्ञान के साथ

जोहड़ निर्माण के बाद खेत भी लहलहा उठे

गाँव के लोगों के परम्परागत अनुभव काम आए। मांडलवास के लोग यह भली-भांति समझ चुके थे कि जल नहीं है तो बुरे दिनों से छुटकारा भी नहीं मिल सकता। विकास की धारणा के पीछे जल की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

जोहड़ों का समय पर रखरखाव हो और उसमें धन की समस्या आड़े नहीं आए, इसके लिए ग्रामसभा में धन का प्रावधान तो किया गया, साथ ही लोगों को उनके आस-पास के जोहड़ों की देखभाल की जिम्मेदारी सौंपी गई। इससे लोगों को अपने पड़ौसी जोहड़ों का संरक्षण करना जरूरी हो गया। अपना जोहड़ सही नहीं होगा तो उसका उन्हें लाभ भी नहीं मिलेगा। इस समझ का कारगर नतीजा भी सामने आया।

मांडलवास में धानकावाला जोहड़ की पाल पर लोक देवता भोमियो महाराज का छोटा मंदिर बनाया गया। मंदिर निर्माण के पीछे गाँव वालों की यह धारणा रही कि मंदिर में पूजा-अर्चना के लिए लोग आएंगे तो जोहड़ के पाल की देखभाल भी होती रहेगी। इस तरह लोगों ने जोहड़ की सुरक्षा को धार्मिक भावना से जोड़ा। ऐसे कम ही उदाहरण पाए जाते हैं कि पाल को लोगों ने अपनी धार्मिक आस्था का केन्द्र बनाया। गाँव वालों का कहना है कि मंदिर निर्माण से पाल तोड़ने का खतरा सदा के लिए टाल दिया।

जोहड़ की सुरक्षा के साथ पाल की मजबूती के लिए मांडलवास में एक नया प्रयोग यह भी हुआ कि पाल की ढाल पर फसल उगाई गई। फसल लगातार उगने से पानी के तेज बहाव के समय पाल टूटने की संभावना नगण्य रह जाती है और कच्ची पाल की मिट्टी खिसकने के बजाए एक स्थान पर जम जाती है। इस प्रयोग को इंजीनियरों ने भी सराहा। इंजीनियरों की नजर में पाल की इस तरह की मजबूती के तरीके से काफी कुछ सीखा जा सकता है। यह विचार गाँव वालों का अपना था। ऐसे प्रयोग से जोहड़ के रखरखाव पर होने वाले खर्चे का कम से कम कुछ भाग तो निकाला जा सकता है। पाल की ढलान पर फसल से जो धन मिलेगा, वह जोहड़ के रखरखाव पर खर्च किया जा सकता है। मांडलवास में पाल की ढलान पर फसल उगाने का यह तरीका कई जोहड़ों पर देखा जा सकता है।

मांडलवास में जोहड़ों की शृंखला इस तरह की तैयार की गई, जो गाँव के जल संरक्षण को बढ़ावा देता है। गाँव के जिस हिस्से में पानी का कभी तेज बहाव रहता था वहां जोहड़ों की शृंखला बनाई गई। इससे गाँव का पानी गाँव में रहने में मदद मिलती है। पानी के उपयोग के लिए मेड़बंदी का भी सहारा लिया गया। जब बरसात होगी तो पानी मेड़बंदी के बूते खेत में रुकेगा और नमी के लिए जरूरी मापदंडों को पूरा करेगा।

इस गाँव में जहां खेत मेड़बंदी नहीं होने से सूने पड़े रहते थे, वहां खेत की सीमा को कच्ची दीवारों से बांधकर उसे मेड़बंदी का रूप दिया गया। मेड़बंदी का जल संरक्षण के साथ लाभ यह भी होता है कि खेतों की सीमा को लेकर अक्सर होने वाले विवादों से छुटकारा मिल जाता है।

बदलता जीवन

मांडलवास अब खुशहाल है और यहां के लोग जल, जंगल और जमीन को समृद्ध बनाने की लम्बी लड़ाई में विजय हासिल कर चुके हैं। हरा-

वृक्षारोपण के लिए पेड़ लेती महिला

भरा जंगल, लहलहाते खेत और इसके बीच लोगों के चेहरों पर खुशियों से आज यह नहीं लगता कि मांडलवास कभी अकाल की चपेट में था। गाँव से अकाल की छाया खत्म हो चुकी है।

वर्ष 1997 तक अकाल के कारण गाँव से लोगों का पलायन थम चुका है। जो जमीन पानी नहीं होने के कारण सूख चुकी थी, उसमें आज सरसों, मक्का या गेहूं की फसल भरपूर होती है। लोग अपने खेतों में भरपूर फसल को देखकर फूले नहीं समाते। कुओं में जल इतना आ चुका है कि गाँव के कई किसानों ने फसल की सिंचाई के लिए दो-दो इंजन कुएँ पर लगा रखे हैं।

यही स्थिति जंगल की है। उजड़ा जंगल आज चारों तरफ से हरा-भरा नजर आता है। गाँव में जंगल पर अपनी आवश्यकताओं को लेकर

निर्भरता को कम किया गया है। गाँव वाले जंगल का अब अनावश्यक दोहन नहीं करते और न ही बाहरी लोगों को चराई की इजाजत देते हैं। जंगल को बचाने की समझ के बाद गाँव वालों ने जंगलात कर्मचारियों की

चारों तरफ अब हरियाली नजर आती है

तानाशाही को खत्म किया है और उनके जुल्मों का डटकर मुकाबला करते हैं।

मांडलवास में 1987 से जल संरक्षण को लेकर शुरू किया गया अभियान आज भी जारी है। तरुण भारत संघ के प्रयासों से गाँव में जल-व्यवस्था को लेकर आत्मनिर्भरता की जो कहानी रची गई, उसमें गाँव आज जल संरक्षण को लेकर काफी सजग नजर आता है।

वर्ष 1990 तक इस गाँव में पांच जोहड़ तैयार किए गए। इसमें गाँववाला, धानकावाला, नवाकुआवाला, सरसावाला एवं लाम्बावाला जोहड़ शामिल थे । आज मांडलवास में दस जोहड़ और इतने ही खेतों पर जल संरक्षण के लिए तैयार की गई मेड़बंदी है।

माण्डलवास, राजोर एवं मथुरावट

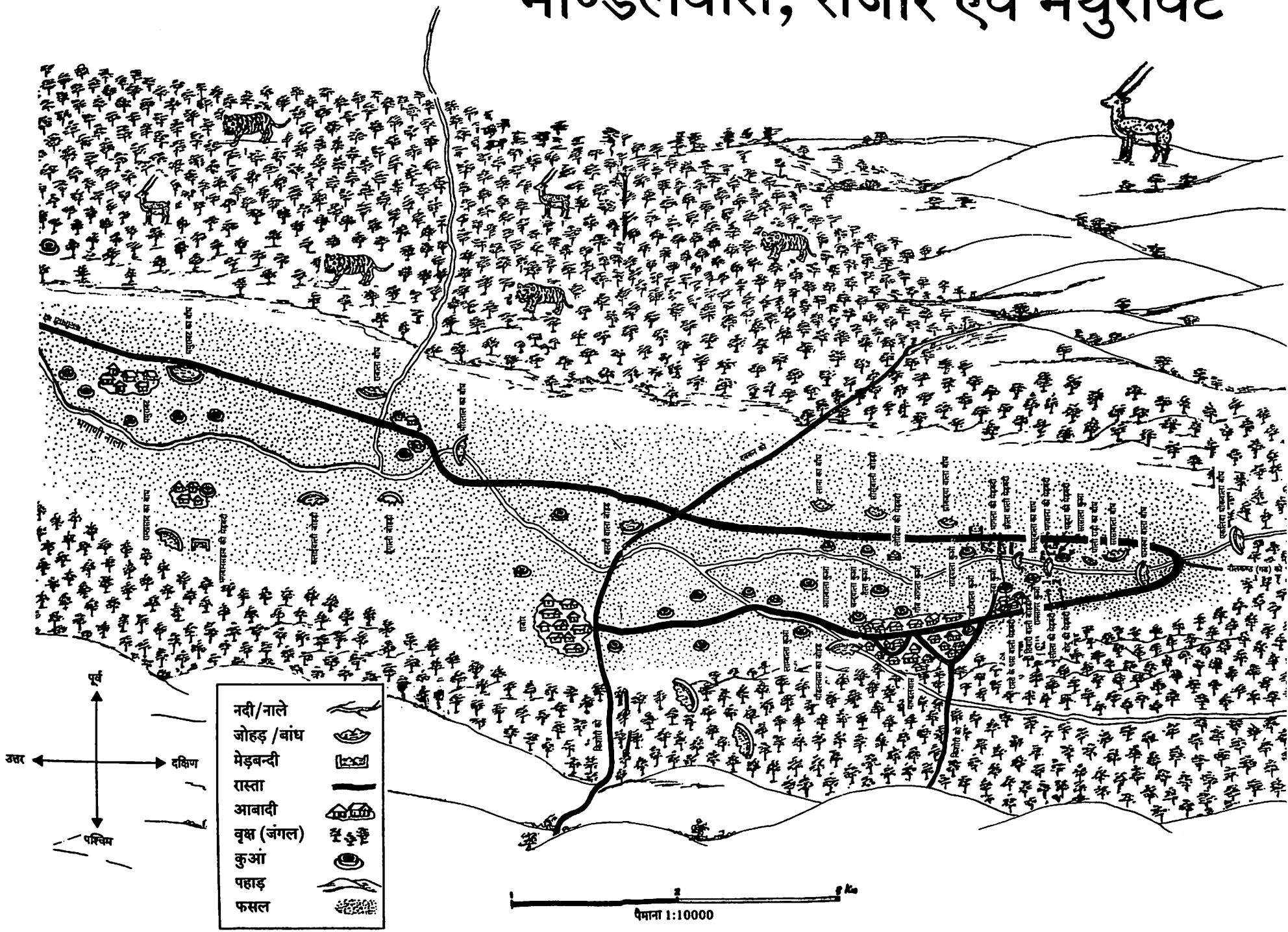

जल संरक्षण को लेकर किये गए प्रयासों का आज मांडलवास में आशातीत परिणाम देखा जा सकता है। गाँव में बारह कुएँ हैं, जिनमें अधिकांश कुएँ सूखा पड़ने वाले वर्षों में सूख चुके थे। जोहड़ों की शृंखला तैयार होने के बाद छह कुओं ने स्पष्ट बदलाव दिखाए। गाँव में अब जल 16 से 18 मीटर तक उपलब्ध है, जो पहले नहीं के बराबर था। गाँववाला जोहड़ से मांडलवास के उत्तर के गाँवों में 15 कुएँ दोबारा सजल हो गए। इनमें कालाखेत, राजौर, कांटला, कान्यावास व मथुरावट के सजल हुए कुएँ शामिल किए जा सकते हैं।

किसी भी गाँव की खुशहाली में जल को आधार माना जाता है। यह आधार कमजोर है तो गाँव की शक्ति भी कमजोर होगी। जल ही जंगल और जमीन को समृद्ध बनाता है और गाँव से भुखमरी की स्थिति को खत्म करता है।

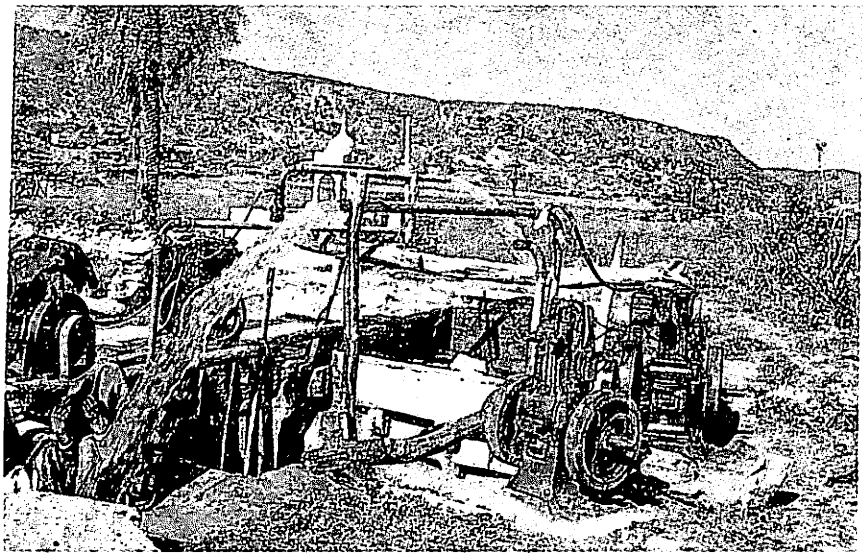

कुआं एक इंजन अनेक - है ना कमाल

मांडलवास में सबसे पहले जलतंत्र को मजबूत किया गया। जोहड़ों का सीधा प्रभाव मांडलवास की भूमि उत्पादकता पर देखा जा सकता है। सूखा वर्ष के दौरान पहले एक बीघा जमीन में 280 से 300 किग्रा मक्का पैदा हो थी, जो जोहड़ बनने के बाद 400 किग्रा तक बढ़ गई। लाम्बावाला जोहड़ से लाभ

उठाने वाले किसानों ने पाया कि अच्छी वर्षा नहीं होने के बावजूद मक्का की पैदावार दोगुणी हो गई।

कृषि योग्य भूमि का तेजी के साथ विस्तार हुआ। धानकावाला और नवकुआवाला जोहड़ के बीच पड़ने वाली जमीनों में उत्पादन उसी समय हुआ, जब इन जोहड़ों का प्रभाव शुरू हुआ। किसानों का कहना है कि अब बंजर पड़ी इन जमीनों पर भरपूर फसल होती है। यहां रबी की फसल भी बोई जाती है। जो पहले संभव नहीं थी। इसकी वजह जोहड़ बनने से कुओं में बढ़ा जल स्तर रहा है।

मांडलवास की मिट्टी अब नमी रोकने योग्य स्थिति में पहुंच गई है। जमीन की नमी का फायदा फसल उत्पादन पर मिलता है। गाँव के पचास वर्षीय काल्या मीणा की खराब पड़ी आठ बीघा जमीन अब भरपूर फसल देती है। इस जमीन पर वर्ष नब्बे के बाद नमी आने से फसल पैदा होने का क्रम शुरू हुआ। पहले आठ बीघा जमीन बंजर रहने से काल्या की आर्थिक स्थिति डांवाडोल थी। उसके सात बच्चों का शेष चार बीघा जमीन की खेती से पालन-पोषण नहीं हो पाता था। अब उसकी बारह बीघा जमीन साल में दो बार फसल देती है। इसके साथ समूचा गाँव आज साल में दो फसल ले रहा है। मांडलवास की प्रमुख फसल गेहूँ और मक्का है। जमीन नम होने एवं कुएँ सजल होने से गेहूँ की बढ़िया पैदावार होने लगी है। जिन जमीनों पर कुओं की व्यवस्था नहीं है, वहां सरसों भी बोई जाती है।

गाँव की जमीनों का कृषि में उपयोग होने के बाद यहां किसान अच्छे बीज का इस्तेमाल करने लगे हैं। गाँव का उत्पादन बढ़ाने के लिए पहले तरुण भारत संघ ने किसानों को अच्छा बीज दिया। अब किसानों में समझ पैदा होने के साथ अच्छे बीज को विशेष महत्व दिया जाता है।

मांडलवास में जल एवं जमीन संरक्षण के साथ जंगल को बचाने का काम आंदोलन के रूप में लिया गया। गाँव के संगठन को मजबूत बनाने के लिए जगन्नाथपुरा के डा. गजराज ने जो मुहिम शुरू की, उसमें जंगल संरक्षण पर जोर

दिया गया। डा. गजराज को तरुण भारत संघ ने गाँव के संगठन को मजबूत बनाने का दायित्व दिया था। इसमें वह सफल हुए और लोगों ने गाँव की खुशहाली का रास्ता संगठन के जरिए ढूंढा।

सरिस्का के बफर क्षेत्र में यह गाँव बसा होने के कारण यहां जंगलात कर्मचारियों का दबाव रहा है। मवेशियों की चराई एवं ईंधन के लिए कटाई को लेकर पहले जंगलात कर्मचारी गाँव के लोगों को किसी न किसी तरह परेशान करते ही रहे, किन्तु अब ऐसी स्थितियाँ नहीं हैं । गाँव में जंगल बचाने को लेकर जो समझ विकसित हुई, उससे जंगलातकर्मियों की मनमानी खत्म हो गई।

तरुण भारत संघ ने मांडलवास में यह समझ पैदा करने में सफलता हासिल की कि यह जंगल हमारा है और उसे बचाने की जिम्मेदारी भी हमारी है। इसके साथ चराई और ईंधन की आवश्यकता को लेकर गाँव के जंगल पर निर्भरता कम से कम हो । ऐसा होगा तो जंगलात कर्मचारियों की तानाशाही को खत्म किया जा सकेगा। मांडलवास में ऐसा ही हुआ। गाँव में जंगल बचाने के लिए नियम बनाए गए।

नियमों में यह तय किया गया कि जंगल में कटाई करने पर संबंधित व्यक्ति दंड का भागीदार होगा। वे लोग भी इस कार्य के लिए जिम्मेदार होंगे, जो जानकारी होने के बावजूद कटाई की ग्रामसभा को समय पर सूचना नहीं देंगे। यहां तक कि छप्पर बनाने के लिए उपयोग आने वाले पत्तों की कटाई पर भी पाबंदी लगा दी गई। छप्पर पर विशेष प्रकार की घास इस्तेमाल की जायेगी, जो मांडलवास में आसानी से उपलब्ध हो जाती है। आज गाँव में छप्पर पर छान डालने के लिए यह घास इस्तेमाल की जाती है।

मांडलवास में बाहरी मवेशियों की चराई पर भी प्रभावी रोक लगाई गई। पहले गाँव में रिश्तेदार अपने मवेशियों को चराने के लिए आ जाते थे, उन पर गाँव वालों ने सख्ती से रोक लगाई। जंगल में मांडलवास के मवेशियों की चराई के लिए भी अलग नियम बनाए गए हैं। मवेशियों को जंगल में नीचे पड़े पत्तों की ही चराई की इजाजत है।

गाँव वालों में जंगलातकर्मियों की गलत हरकतों को रोकने का भी साहस पैदा हुआ। पहले गाँव से हफ्तावसूली होती थी, लेकिन अब यह स्थिति नहीं है। गाँव में हफ्तावसूली करने के लिए आने वाले जंगलातकर्मियों का विरोध कर उन्हें भगा दिया जाता है। इस विरोध के बाद जंगलात कर्मचारी यह समझ गए कि गाँव वालों को परेशान करने के बजाय उनका जंगल बचाने की मुहिम का समर्थन किया जाए। सरिस्का के जंगलात अफसरों ने गाँव के कार्य को सराहा है।

साक्षर हुए लोग

मांडलवास में आत्मनिर्भर होने के लिए शिक्षा को भी जरूरी माना गया। अनपढ़ रहेंगे तो उसका अवांछनीय लोग नाजायज फायदा उठायेंगे और समाज में पिछड़ते चले जाएंगे यह भावना लोगों में जागृत हुई। लोगों ने यह तय किया कि गाँव की युवा पीढ़ी को शिक्षित किया जाए।

गाँव के बुजुर्ग यह भली-भांति समझ चुके थे कि उन्हें अनपढ़ रहने का कितना नुकसान उठाना पड़ा। लेकिन यह नुकसान कम से कम युवा पीढ़ी तो नहीं उठाए। गाँव को साक्षर करने की जिम्मेदारी रामपाल को सौंपी गई। वह दसवीं पास था, लेकिन उसके भीतर गजब का आत्मविश्वास था। रामपाल काफी समय से गाँव को साक्षर करने का बीड़ा उठाना चाहता था किन्तु उसे कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था।

गाँव को शिक्षित करने के कार्य को तरुण भारत संघ ने आसान किया। संस्था ने गाँव के बच्चों की पढ़ाई के लिए स्कूल खोला और उसमें अध्यापक बने रामपाल। यह स्कूल वर्ष 1987 में प्रारंभ हुआ। इससे पहले राजौर में सरकारी स्कूल चलता था, लेकिन उसमें अध्यापकों के नहीं आने की शिकायत रहती थी।

पहले मांडलवास में सबसे ज्यादा शिक्षित जगदीश था, जो आठवीं कक्षा तक पढ़ा था। उसकी उम्र पचास साल की है। उस समय ज्यादा पढ़ा होना गाँव के लिए आश्चर्य था और लोगों ने उसे जगदीश पढ़ाया का संबोधन देना

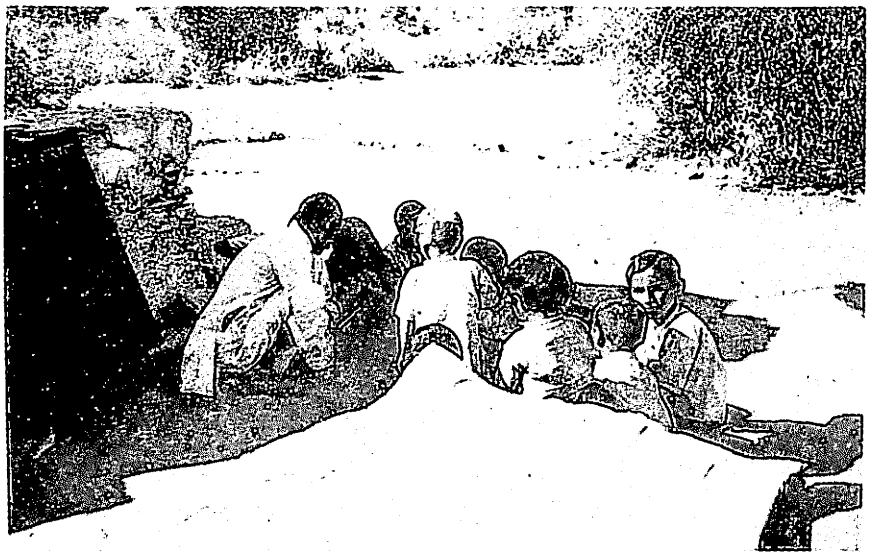

गाँव के बच्चे अब पढ़ने लगे

शुरू कर दिया। वर्ष 1987 तक जो बच्चे थोड़ी बहुत पढ़ाई कर रहे थे, उन्होंने गाँव में साक्षरता का वातावरण पैदा होने के बाद आगे पढ़ाई जारी रखने का फैसला किया।

मांडलवास में बी.ए. पास कर एस.टी.सी. का कोर्स करने के बाद रामस्वरूप तो अध्यापक भी बन चुका है। वह पहले राजौर पढ़ने जाता था और उसके बाद उसने टहला व राजगढ़ में शिक्षा हासिल की । गाँव के बच्चे आज रामस्वरूप से भी बड़ा पद पाने की तमन्ना रखते हैं।

गाँव के कैलाश, ख्यालीराम, कमलेश व रमेश ने ग्यारहवीं तक की कक्षा पास कर ली है। गाँव के तीस से अधिक बच्चे पड़ौसी गाँव राजौर के स्कूल में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। इनसे बड़ी उम्र के लड़के टहला व राजगढ़ के स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाई करने जाते हैं।

मांडलवास में शिक्षा का अच्छा माहौल बनने के बाद तरुण भारत संघ का शिक्षा केन्द्र बंद हो चुका है। इसकी वजह यह रही कि संस्था ने इस केन्द्र

को गाँव में शैक्षिक जागृति के लिए खोला था और वह मकसद में कामयाब भी रहा। शिक्षा केन्द्र चलाने वाला रामपाल अपनी पत्नी और मां-बाप की मौत के बाद बच्चों के पालन-पोषण में लगा हुआ है।

गाँव में महिलाओं को शिक्षित करने के कार्य में अपेक्षाकृत वृद्धि नहीं हुई है। गाँव के जागरूक लोग अपनी लड़कियों को राजौर भेजने लगे, लेकिन यह संख्या लड़कों की अपेक्षा कम है। गाँव वालों का कहना है कि लड़कियों को राजौर भेजने में असुविधा रहती है। मांडलवास में स्कूल खुल जाए तो बच्चियों को भी वहां पढ़ने के लिए भेजा जा सकता है।

बरदू ने बदली जिंदगी

मांडलवास का बरदू मीणा ऐसा नाम है जिसने गाँव में तरुण भारत संघ को लाने के लिये जी-तोड़ कोशिश की और फिर सफलता भी हासिल की। अब इसी संस्था के काम से बरदू इतना खुश है कि वह फूला नहीं समाता।

सबसे पहले वर्ष 1986 में बरदू ने ही इस संस्था के जल, जंगल और जमीन बचाने के चर्चे सुने। उसके बाद इसने संस्था को तलाशा और अपने गाँव में आने का आग्रह किया। बातचीत आगे बढ़ी, गाँव में संस्था वाले आये और पानी बचाने व बढ़ाने का प्रयास शुरू हुआ, सबसे पहले धानकावाला बांध का निर्माण कार्य शुरू हुआ, उसके बाद तिबारी वाला बांध बना और धीरे-धीरे काम बढ़ता ही गया। गाँव के सभी लोगों को काम पसंद आया और धीरे-धीरे करके सभी लोग जुट गये। गाँव के लोगों को लगने लगा कि क्यों ना इसी संस्था से और भी काम करवाये जाये।

इस गाँव के साथ ही आस-पास मथुरावट, गढ़, राजौर, कांसला, कालाखेत, कान्यास, कराट व कांकवाड़ी आदि में भी काम शुरू हो गया। बरदू मीणा ने इन गाँवों के लोगों को समझाने में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। काम इतना अच्छा चलता गया कि सरिस्का बाघ परियोजना क्षेत्र के तत्कालीन निदेशक फतह सिंह राठौड़ भी खुश हुए और वर्ष 1991 के

जंगल बचाने के लिये वर्ष 1991 में सरिस्का के निदेशक ने बरदू मीणा को सम्मानित किया

आने तक तो सब कुछ बदल-सा गया। सूखे दरख्त हरे हो गये, कुंओं में जहां पानी नजर नहीं आता था वहां पर पानी भरपूर दिखने लग गया।

गाँव की बहबूदी के चर्चे जब दूर-दूर तक फैले तो तत्कालीन मुख्य वन्य जीव प्रतिपालक बी.डी. शर्मा भी यहाँ आये और काम की प्रशंसा करके गये। इसके साथ ही ऐसा पहली बार हुआ कि सरिस्का बाघ परियोजना के निदेशक फतह सिंह राठौड़ ने इस गाँव को सम्मानित किया वरना उससे पहले वन विभाग के लोग व ग्रामीण एक-दूसरे के विरोधी हुआ करते थे। बरदू मीणा को तो इस काम की जैसे सनक सी लग गई। 1986 में वह जिस उत्साह के साथ तरुण भारत संघ के साथ जुड़ा था आज भी वह उसी उत्साह के साथ जल, जंगल और जमीन बचाने के काम में जुटा हुआ है। पूरी छींड़ में अब तक वह दो दर्जन के लगभग बांध आदि बना चुका है। इनके बनाने में यहाँ पर व्यवस्था यह है कि श्रमदान गाँव वाले करते हैं और बाकी पैसा संस्था लगाती है।

जागृति पैदा करने के उद्देश्य से बरदू के नेतृत्व में कई काम अब तक करवाये जा चुके हैं। हर वर्ष" पेड़ लगाओ पेड़ बचाओ" पद यात्रा यह करता है। भर्तृहरि नामक धार्मिक स्थान पर पेड़ मेला का आयोजन होता है। भर्तृहरि में ही कुश्ती दंगल होता है और जीतने वाले को हरी शॉल ओढ़ाकर सम्मानित भी किया जाता है, उसी के हाथ से पेड़ भी लगवाया जाता हैं।

रक्षा बंधन का त्यौहार यह गाँव कुछ अलग तरीके से मनाता है। ये लोग परंपरा के अनुसार अपने परिवार की राखी बांधने के बाद सामूहिक रूप से पेड़ों को राखी बांधते हैं। गाँव वालों की जागरूकता से केवल पेड़ ही सुरक्षित नहीं हैं बल्कि वन्य जीव भी अब अधिक सुरक्षा महसूस करते हैं। उनका शिकार खुद नहीं करते, यदि कोई शिकारी भी नजर आ जाये तो उसको भी पकड़ते हैं और पहले खुद इलाज करते हैं, बाद में जंगलात वालों के हवाले कर देते हैं।

मुख्य वन्य जीव प्रतिपालक बी.डी. शर्मा ने सरिस्का के निदेशक फतह सिंह राठौड़ व तभासं महामंत्री राजेन्द्रसिंह को सम्मानित किया

दस वर्षों में आई समृद्धि ने न सिर्फ इनका रहन-सहन बदला है बल्कि अन्य स्थानों पर भी इनकी प्रतिष्ठा बढ़ी है। गाँव वाले कहते हैं कि अब उन्हें अपने बच्चों की शादी करने में ज्यादा परेशानी का सामना नहीं करना पड़ता।

पहले लड़के-लड़िकयाँ कुंवारे भी रह जाते थे पर अब रिश्तों की कमी नहीं है। खेतों में अनाज की पैदावार तो अच्छी खासी बढ़ी ही है। गाँव वाले कहते हैं। ''अब खूब होंवे गेहूं चणा, सब साधन होगा खूब घणा''। पहले खाने के लिये दाणे मौल खरीदने पड़ते थे अब खुद भी बेचने लगे हैं। सरकार के साथ लड़ाई करके गाँव से अब सड़क भी निकल गई है। गाँव वालों की इच्छा है कि एक अस्पताल और खुल जाये तो ठीक रहे।

मथुरावट

सूखे से समृद्धि की ओर

सरिस्का के बफर क्षेत्र में बसा है मथुरावट। बसाने वाले गुर्जर थे पर अब यहां रहते हैं बलाई व कुछ मीणा। 45 घरों की बस्ती। मन में एकता की भावना और विरोधियों को धकेलने का विचार। जंगल के प्रति प्यार और पानी के प्रति समझ। यही है यहाँ के लोगों की सच्चाई।

बार-बार जंगलात वालों से भय खाने वाले इस गाँव के लोग अब जंगलात कर्मचारियों को ही शिक्षा देने लगे हैं। साफ कहते हैं कि अगर हमें जिंदा रहना है तो जल और जंगल को भी बचाकर रखना होगा। यह सीख इन्होंने ली है क्षेत्र में काम करने वाली संस्था तरुण भारत संघ से।

गाँव की बसावट कैसे हुई। इसका कोई पुख्ता प्रमाण तो नहीं है पर जो बात सामने है उससे पता लगता है कि सैकड़ों वर्ष पहले भूरियावास के पास स्थित खडाटा से गंगाराम व अन्य दो गुर्जर परिवार यहां रहने के लिये आये थे। उनके गाँव में अकाल की स्थिति थी और मथुरावट उस समय हरा-भरा था। बाद में राजौर से बलाई और मीणा जाति के लोग आये व यहीं पर बसे। पर खडाटा से आये गुर्जरों को यह स्थान रास नहीं आया और समय बदलने के बाद वे वापिस चले गये। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि जब अलवर के राजा जयसिंह ने इस क्षेत्र को संरक्षित वन क्षेत्र घोषित किया तो गाँवों को हटाने पर जोर दिया गया। उस समय बलाई व

मीणाओं ने संगठन बनाकर गाँव नहीं छोड़ा पर राजा के भय से गुर्जर जाति के लोग पहाड़ के दूसरी तरफ बसे गाँव मान्याला में चले गये। इस समय इन दोनों जातियों बलाई व मीणाओं ने अपनी-अपनी अलग-अलग ढाणियां बना रखी हैं। वहीं ये लोग रहते हैं।

गाँव के लोगों में फिलहाल जंगल की समझ और अपने अधिकारों की ताकत है। वे किसी सम्मानजनक समझौते के अभाव में इस क्षेत्र को छोड़ने के हक में नहीं हैं। हालांकि सरिस्का के संरक्षित क्षेत्र में बसे होने के कारण इस गाँव के लोगों को शिक्षा, चिकित्सा, पशुपालन आदि सभी कार्यों में परेशानी आती है फिर भी उनका मानना है कि जब तक हमें हमारी इच्छानुसार जमीन नहीं दी जायेगी हम इस स्थान को नहीं छोड़ेंगे ।

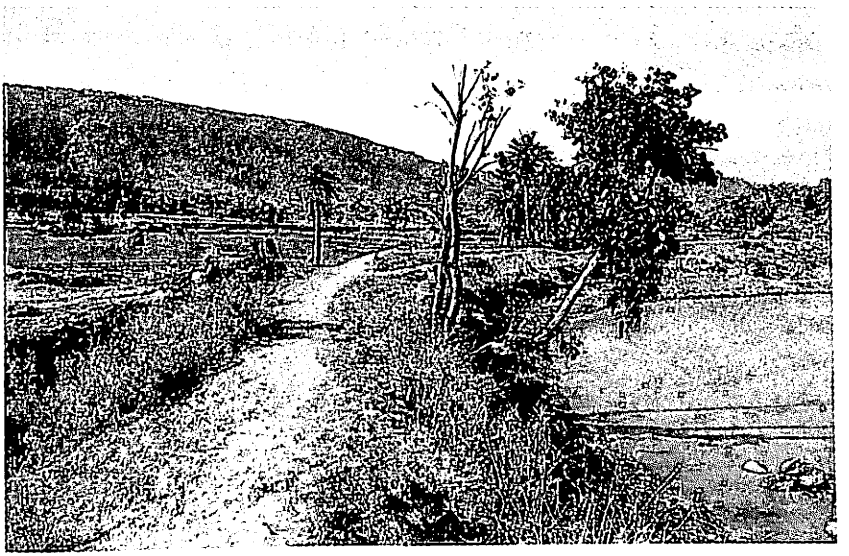

मथुरावट में बना बांध

सचमुच में इस गाँव को जब शहर का आम आदमी देखता है तो बड़ा अचंभित होता है और उसे लगता है कि ये लोग पता नहीं किस तरह से यहाँ रहते होंगे पर जब गाँव वालों से बात करें तो उनके मन की इच्छा में कहीं कुछ भौतिक सुखों की बात सुनने को नहीं मिलती। गाँव के लोग सन् 1985 की

स्थिति को बयान करते हुए रो देते हैं और कहते हैं कि उस समय यदि तरुण भारत संघ हमारे सामने नहीं आता तो हम बर्बाद हो चुके थे पर आज हम गर्व से कह सकते हैं कि अब समृद्धि की तरफ बढ़ रहे हैं।

नंगी पहाड़ियों और सूखे कुओं के कारण जब पीने के पानी और पशुओं के लिये चारा तक को इस गाँव के लोग मोहताज हो गये तो 1985 में अधिकांश लोगों ने सड़कों के किनारे बसे गाँवों में अपना डेरा डाला था परंतु भूख और बीमारी के कारण इनकी यहाँ भी पार नहीं पड़ी तो कमाने-खाने की इच्छा से गाँव के कुछ लोग जयपुर, दिल्ली व सूरत चले गये। कुछ लोग गाँव में भी रुके व कुछ किशोरी में रहे।

उसी समय यहां के लोगों के संपर्क में तरुण भारत संघ नामक समाज सेवी संस्था आई। गाँव वालों ने संस्था के पदाधिकारियों को अपनी स्थिति बताई तो उन्होंने कुछ मदद करने का वादा किया। दो-तीन बैठकों के बाद यह

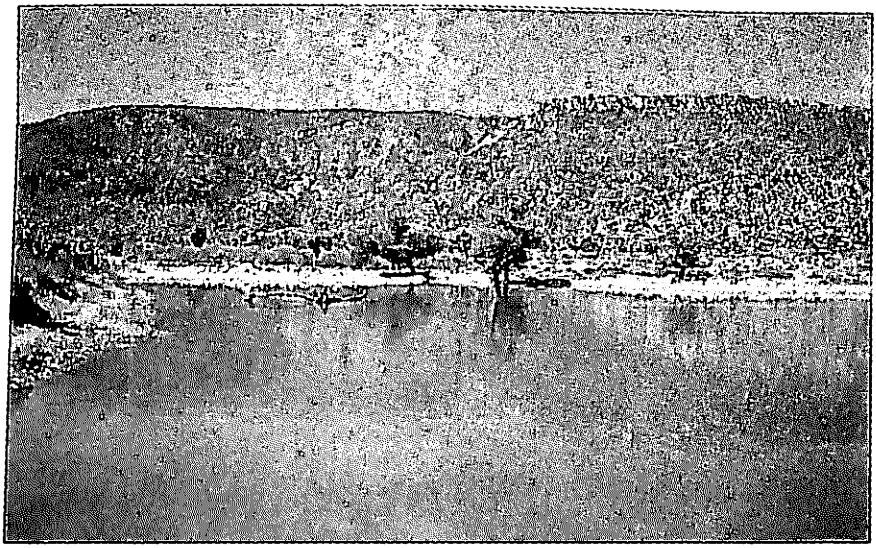

पानी को देख फूले नहीं समाते लोग

तय हो गया कि संस्था के काम को गाँव के लोग करेंगे और आर्थिक मदद संस्था देगी। तभी जन्म लिया एक छोटे बांध ने।

संस्था के सहयोग से 1987 में गाँव की पश्चिम दिशा की ओर पहला छोटा बांध बना। इस बांध में फिर पानी रुका और कुछ ही समय के बाद उसका असर नजर आने लग गया। दो-तीन कुओं में कुछ पानी नजर आने लगा तो लोगों की आँखों में भी खुशी नजर आई।

एक छोटे से बांध का असर देखकर गाँव के पुरुष-महिला और बुजुर्ग फूले नहीं समाये। उसके बाद तो संस्था और गाँव वालों का चोली-दामन का साथ हो गया। काम में तेजी लाई गई और 3 अन्य बांध भी बनाये गये। इसके बाद गाँव के सभी कुओं में अच्छा-खासा पानी नजर आने लगा। जो पहाड़ियां नंगी हो चुकी थीं, उन पर भी हरियाली आने लगी।

धीरे-धीरे गाँव वालों ने अपने बाहर गये साथियों को संदेश भेजा कि अब वापिस चले आओ । यहां सब कुछ अच्छा हो गया है। तरुण भारत संघ के रिश्ते-नातों को भी गाँव वालों ने पत्रों में लिखा। अब सभी यहाँ वापिस आ चुके हैं। जोहड़ों के असर से खेती की फसल कई गुणा बढ़ी, पशुओं के लिये पर्याप्त चारा मिला, दूध बढ़ा, रोजगार के साधन पैदा हुए और जिंदगी जीने के तरीकों में बदलाव का भी मन हुआ। समृद्धि की तरफ बढ़े लोगों ने जल्दी ही अपनी झोंपड़ियों को पक्के मकानों में बदलना शुरू कर दिया। कुछ लोग आज भी झोंपड़ियों में बसर करते हैं पर फिर भी दरिद्रता उनसे कोसों दूर है। अब वे मन के राजा हैं। गाँव का दूध पीते हैं और अपने ही खेत का साग भी खाते हैं। समय के साथ-साथ संस्था ने भी अपनी बात बढ़ाई और लोगों से कहा कि अब खेती-बाड़ी अच्छी होने लगी है तो कुछ समय पढ़ाई के लिये भी दिया जाये। पहले तो वे कहने लगे कि पढ़ने से हमारे क्या होने वाला है, पर जब बात समझाई गई तो लोग समझ गये। एक बुजुर्ग ने तो ग्रामसभा में यह भी कहा कि संस्था वाले यदि पढ़ने के लिये कह रहे हैं तो निश्चित रूप से इसमें कोई हमारा ही फायदा होगा।

बात मान ली गई और गाँव वालों ने कहा कि यदि पढ़ाई की व्यवस्था हो जाये तो कुछ बच्चों को भेजा जा सकता है। तरुण भारत संघ ने गढ़ गाँव के कार्यकर्ता बनवारी लाल सैन को पढ़ाने का जिम्मा सौंपा और शिक्षण सामग्री

उपलब्ध करवाई। पहले दिन केवल 3 बच्चे पढ़ने आये। तीन बच्चों को देखकर धीरे-धीरे यह संख्या बढ़ी और 27 तक पहुँच गई। अब संस्था के स्कूल में गाँव के लड़के-लड़कियाँ सभी पढ़ते हैं।

गाँव में किताबी ज्ञान से काम नहीं चलने वाला था इसलिये महिला और पुरुषों को जंगल की समझ पैदा करने वाला प्रशिक्षण भी शुरू किया गया। संस्था वाले मानते थे कि जंगल क्योंकि यहाँ की जिंदगी का मुख्य आधार है इसलिये इसकी समझ अधिक जरूरी है।

महिला चेतना शिविर

जंगल का प्रशिक्षण भले ही तरुण भारत संघ ने लोगों को स्वावलंबी बनाने के लिये शुरू किया हो परंतु कुछ लोगों में संस्था के प्रति शंका हो गई। वे सोचने लगे कि शायद ये भी जंगलात वाले ही लोग हैं। इनमें व उनमें अंतर केवल इतना था कि जंगलात वाले लोग डंडे के जोर से जंगल बचाने की बात करते थे और ये डंडा नहीं लाते थे। शंका समाधान के लिये संस्था के कार्यकर्ताओं ने गाँव वालों से कहा कि आप कुछ दिन हमारी बात सुन लें अगर कुछ अच्छा लगे तो हमारे साथ रहना वरना हमें विदा कर देना।

चूंकि कुछ ही लोग विरोध में थे इसलिये बात मान ली गई। इस दौरान जंगल का प्रशिक्षण चलता गया। कुछ ही दिनों में लोगों को यह बात समझ आ गई कि जंगल, जंगलात वालों की सम्पत्ति नहीं है बल्कि यह हमारी अपनी संपत्ति है और यह बची रहेगी तभी हम भी बचे रहेंगे वरना हमारा जीवन भी बर्बाद हो जायेगा। जब यह समझ बढ़ी तो संस्था के साथ गंभीरता से काम करने का मन बनाया गया। आसपास के गाँव वालों से भी बात की गई। तय हुआ कि जंगल को बचाना है। इससे वे लोग तो नाराज हुए जो जंगलात वालों को राजी करके जंगल काट लेते थे पर ज्यादातर संख्या उनकी थी जो जंगल बचाने के पक्ष में थे।

सन् 1988 में ही तरुण भारत संघ के साथ यह जंगल बचाने का अभियान शुरू हो गया। पहले तो मथुरावट वालों ने राजौरगढ़ व कालाखेत वालों को ही शामिल किया पर बाद में चौदह छोटे-छोटे गाँवों के साझा अभियान के रूप में जंगल बचाने का काम उठाया गया। ये चौदह गाँव गढ़, मांडलवास, राजौर, कांसला, मथुरावट, कालाखेत, कालास, कांकवाड़ी, कराट, पीला पानी, दक्कन, सिरावट, मिसराला व भगानी थे।

चौदह गाँवों के साझा अभियान में अलग-अलग तरीके से कमेटियाँ भी बनाई गईं। पशुओं को भी घने जंगल में घुसने से रोकने के लिये कमेटी बनी। जंगल बचाने की अलग कमेटी बनी। गाँव की शक्ति बनी और एक साथ सबसे पहले तय किया गया कि आज के बाद हम जंगलात विभाग के गार्डों सहित अन्य किसी भी कर्मचारी को रिश्वत नहीं देंगे। पहले तो लोगों ने जोश में इतना तक कह डाला कि जंगलात वाले ही रिश्वत लेकर जंगल कटवाते हैं इसलिये हम उन्हें गाँवों में प्रवेश भी नहीं करने देंगे। इस संगठन का यदि सबसे अधिक किसी को दुख हुआ तो वे जंगलात के कर्मचारी ही थे। उन्हें शुरू में लगा जैसे हमारी रोजी-रोटी ही छिन गई हो।

जब बच्चे पढ़ने लगे व जंगल बचने लगा तो सोच विकसित हुई। कहा जाने लगा कि हम लोग बीमारी की स्थिति में परेशान होते हैं क्योंकि आसपास चिकित्सा की कोई व्यवस्था नहीं है। न लोगों की चिकित्सा और न ही पशुओं

की चिकित्सा। इस कारण गाँव वालों ने तरुण भारत संघ से कहा कि आपका स्कूल और जंगल का प्रशिक्षण चल रहा है। अब यदि चिकित्सा का भी कोई रास्ता तलाशा जाये तो बेहतर होगा। संस्था ने जब इस पर गंभीरता से विचार किया तो एक ही विकल्प सामने आया कि इन्हीं के जंगलों में जो जड़ी-बूटियाँ हैं जिन्हें ये लोग भूल चुके हैं उन्हीं को फिर से तलाशा जाये और इलाज के लिये वे ही प्रयोग में लाई जायें ताकि गाँव के लोग अंग्रेजी दवाओं से भी बचें और उपचार भी हो जाये। संस्था ने देशी जड़ी-बूटियों की तलाश की। मांडलवास गाँव के रामजीलाल वैद्य से बात की। उन्होंने ही प्रशिक्षण का काम भी शुरू किया और दवाएं भी वितरित कीं। लोगों की चिकित्सा का काम जड़ी-बूटियों से ही होने लगा।

पशुओं के उपचार के लिये भी पुरानी पद्धतियों को ही पुनर्जीवित किया गया। धीरे-धीरे अब स्थिति यह आ गई है कि न तो गाँव के लोग और न ही पशु कुपोषण व अन्य बीमारियों से मरते हैं और न ही उन्हें चिकित्सा के लिये दूर-दूर तक धक्के खाने पड़ते हैं।

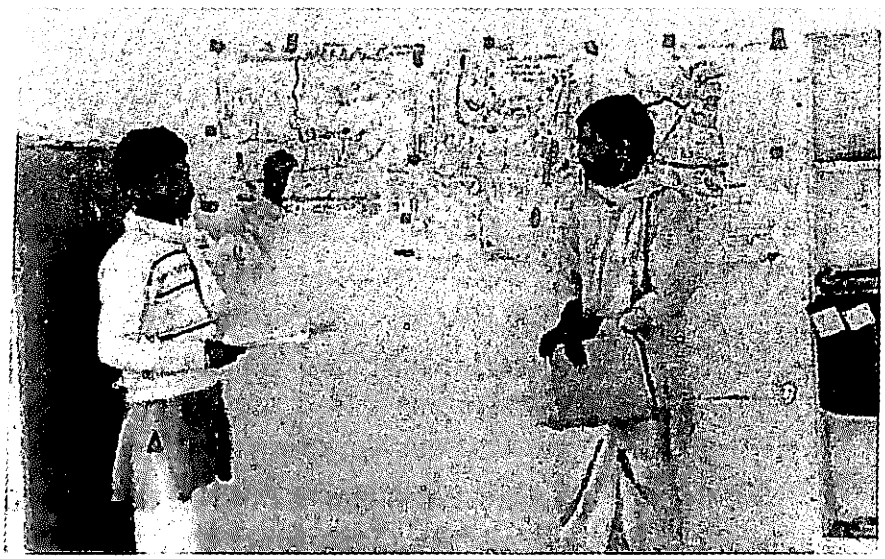

संसाधन मानचित्र समझाते तभासं कार्यकर्ता

जब किसी को मौका मिलता है तभी उसकी योग्यता की सही पहचान होती है। एक तरफ परिस्थितियों की चपेट से मथुरावट के लोग पानी के लिये गाँव छोड़कर जा रहे थे तो दूसरी ओर जब मौका मिला तो लोगों ने अपने गाँव को तो पानी से भरा ही, पड़ौस वालों को भी तकनीक समझाई। मथुरावट के रमसी कारीगर ने कांसला गाँव के लोगों को समझ बांटी और वहाँ का एनीकट तैयार किया जो कि भगानी नदी पर बना है और आज भी पूरे यौवन पर खड़ा है।

इस एनीकट व दूसरों के भरोसे अब भगानी नदी भी पूरे वर्ष बहने लगी है। मथुरावट छोटा गाँव है। खेती की जमीन भी कम है पर चारों तरफ की खुशहाली के कारण अब यहाँ के लोगों को गरीबी नहीं खलती है।

सरकारी विकास की तो परछाई भी इस गाँव पर नहीं है पर लोगों ने अपने हिसाब से काम शुरू किया है। गाँव में अब एक आटा चक्की भी

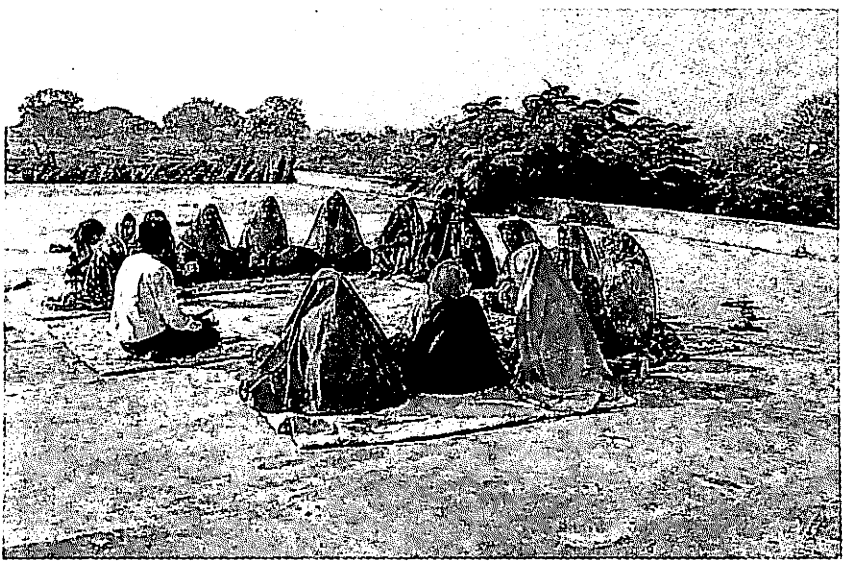

महिलाओं ने भी कई बैठकें की

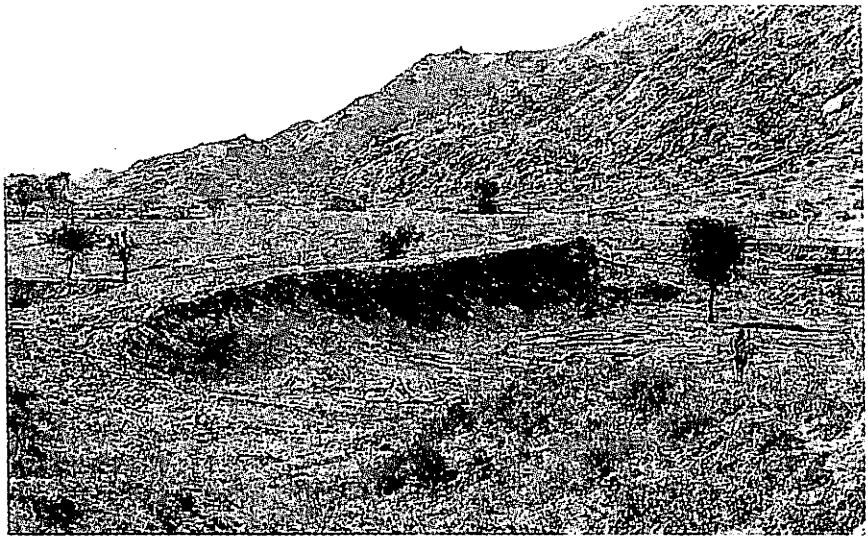

रामपाल मीणा की अगुवाई में बना जोहड़

लगी है। कुछ अर्थों में यह चक्की परावलंबन का संकेत देती है पर यह समृद्धि का प्रतीक भी है। इससे अब गाँव की महिलाओं को अपने हाथों से आटा नहीं पीसना पड़ता और वे इससे बचने वाले श्रम को दूसरे कार्यों में लगाती हैं।

कुओं पर इंजन लगा हुआ है। पहले जिस खेत में पानी देने में छह घंटे लगते थे अब वहाँ केवल दो घंटे में सारा काम होता है। जो कुआँ पहले एक घंटे में पानी तोड़ जाता था वह अब पूरे रात-दिन चलने की स्थिति में है। गाँव के भोले लोग अब सरकार से पहले जितना नहीं डरते। साफ कहते हैं कि सरकार यदि हमें यहाँ से हटाकर कहीं और भी बसाना चाहे तो हम बसने को तैयार हैं पर हमारी शर्तें माननी पड़ेंगी। सरिस्का के भीतर बसे गाँवों को हटाने की चर्चा कई बार सरकार चलाती रही है इसलिये गाँव वालों को यह भ्रम है।

मथुरावट सरिस्का बाघ परियोजना के बफर क्षेत्र में बसा राजस्व गाँव है। यह राजौरगढ़ ग्राम पंचायत के अधीन आता है। जंगल में रहने

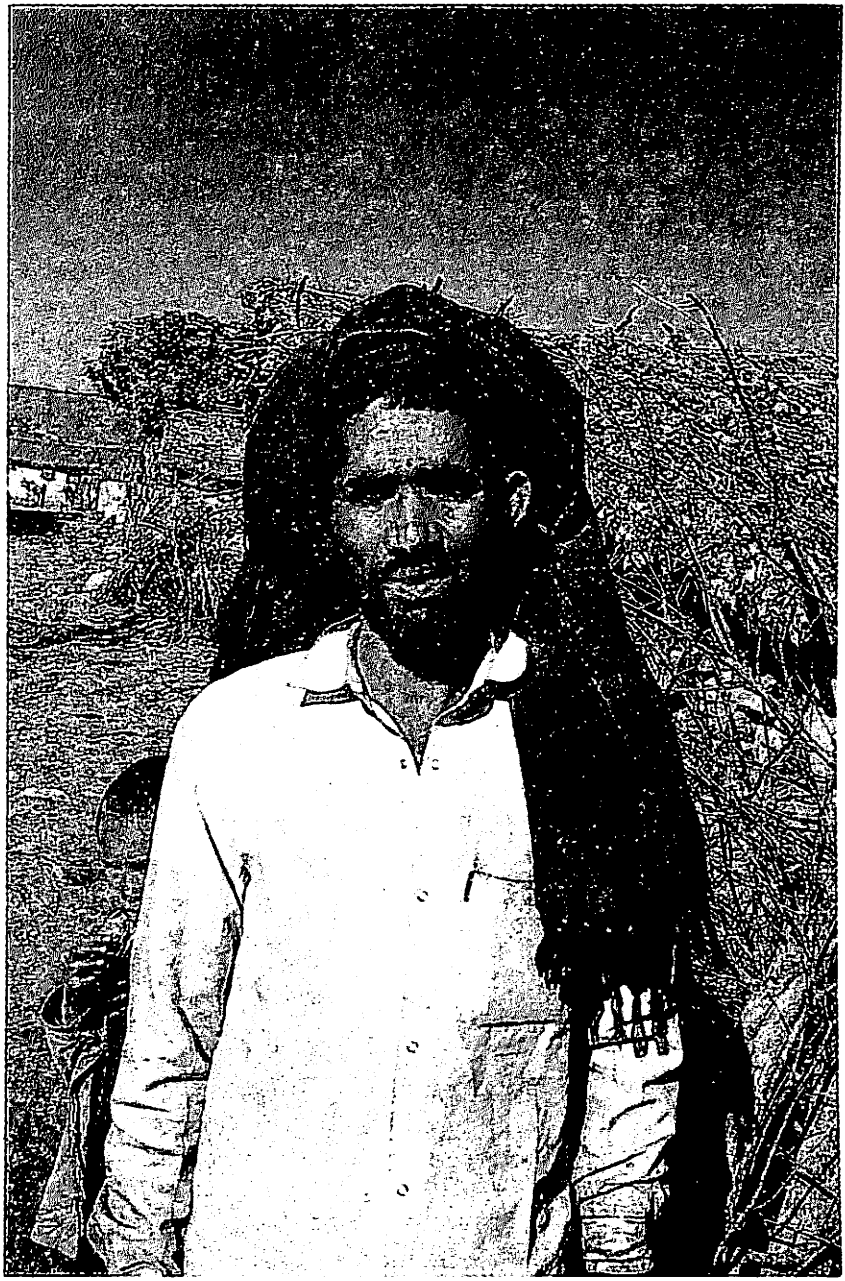

रामपाल मीणा

के कारण वन्य जीवों से भी इसका गहरा रिश्ता हो गया है। कई बार बाघ भी इसके क्षेत्र में आ जाता है पर ये लोग उसे मारते नहीं। इनका मानना है कि हमारी तरह उन्हें भी जीने का अधिकार है। ये मानते हैं कि हमारे लिये जितने जरूरी जंगल हैं उतने ही जरूरी वन्यजीव भी हैं। लोगों में भी पुराने संस्कार है। किसी के भी परिवार में बीमारी आदि की स्थिति में लोग एक-दूसरे के यहाँ हाल-चाल पूछने आज भी जाते हैं।

पशुओं की रंगत बदली

गाँव के लोग जब बदहाली से समृद्धि की तरफ बढ़े तो न सिर्फ वे अच्छा खाने और पहनने लगे बल्कि पशुओं को भी अच्छा खाने को मिला जिससे दूध भी बढ़ा और पशुओं की उम्र भी। गाँव का सर्वे करने पर साफ पता लगता है कि जो पशु वर्ष 1985 में दूध नहीं देते थे उनमें से जो भी जीवित बच पाये वे 1990 तक आते-आते पाँच-पाँच किलो तक दूध देने लग गये।

बदहाली के कारण लोगों ने पशुओं को रखना भी बंद कर दिया था परंतु समय बदला तो फिर से लोगों ने पशुओं को खरीदा और अपनी जिन्दगी के साथ उनका अटूट रिश्ता बनाया। यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय भी पशुपालन ही है, इसलिये भी उनकी तरफ ध्यान कुछ अधिक गया। सबसे अधिक दूध की मात्रा भैंस की बढ़ी, बकरियों में दूध की अभी भी उतनी बढ़त नहीं हो पाई जितनी कि उम्मीद की जाती थी, पर लगातार उनकी संख्या बढ़ने से लोगों में समृद्धि बढ़ रही है। गाँव में गाय, भैंस व बकरियों के अलावा कुछ के पास ऊँट, बैल व गधे भी हैं जिनका वे अपने-अपने तरीके से उपयोग करते हैं।

पढ़ना-लिखना सीखे

1985 में गाँव का एक भी व्यक्ति पढ़ा-लिखा नहीं था और न ही उनमें पढ़ने की चाह थी पर बाद में जागी ललक ने आज गाँव में पढ़ाई का माहौल तैयार किया है। कुल तीन दर्जन के लगभग बच्चे तरुण भारत

संघ के स्कूल में पढ़ते हैं। इनमें से 27 की उपस्थिति नियमित है शेष कभी आते हैं व कभी गोल हो जाते हैं। महिला शिक्षा के प्रति तो कभी इनका रुझान रहा ही नहीं पर जब तभासं ने समझाया कि महिलाओं को पढ़ने के कितने फायदे हैं तो वे भी अब आगे आने लगी हैं। बलाई जाति के लोग तो वर्ष 1992 तक पढ़ाई को बेकार मानते रहे पर अब वे इसके पक्ष में हैं और अपने बच्चों को स्कूल भी भेजते हैं।

मथुरावट के लोगों के लिये तरुण भारत संघ जिन्दगी की सच्चाइयों को बनाने और समस्याओं से जूझने के लिये तैयार करने वाला एक स्कूल साबित हुआ है। पिछले एक दशक में देशभर के अनेक सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, पत्रकारों और अन्य बुद्धिजीवियों ने इस गाँव में जाकर अपनी बातें कही हैं। अब वे समझने लग गये हैं कि हमारा संगठन रहेगा तो हमारे में शक्ति रहेगी। एक नहीं तरह-तरह की बातें अब ये लोग सीख गये हैं। बाहर से आये कितने ही लोगों का नाम तक बताकर ये लोग आज भी कहते हैं कि हमने उनसे बहुत कुछ सीखा है।

अब चारों तरफ नजर आती है पानी की धारा

देश के प्रमुख हिन्दी दैनिक 'जनसत्ता' से आये राजेन्द्र घोड़पकर गाँव के लोगों के साथ चौपाल पर बैठकर बतियाये और एकता की अच्छी बातें सिखाईं। लोग कहते हैं कि उनसे हम सीखे हैं कि हमारी सामलात देह हमारे भीतर पनपी अपनेपन की भावना के कारण समाप्त हुई है। अंग्रेजी शिक्षा के कारण समाप्त हुई है और लोगों की इस समझ ने भी समाप्त किया है कि सारे विकास के काम सरकार के हैं। देश के एक अन्य प्रमुख समाज सेवी निरंजन महावर, सर्वोदयी चिंतक सिद्धराज ढड्ढा, तरुण भारत संघ के अध्यक्ष अनुपम मिश्र, डॉ. के.के. मुखर्जी आदि आये।

संस्था द्वारा प्रयास करने के बाद जो समझ पैदा की गई है उससे अब यहां के लोग यहां की वनस्पति का प्रयोग भी भली प्रकार करने लगे हैं। एक सर्वे के दौरान पता लगा है कि यहाँ पर धोंक, छीला, सालर, गोवडा धोंक, बैडा, कैम, खजूर, बाँस, शीशम, बकाण, पापड़, कालाखैर, बोंली, पीपल, खैणी, सैजना, आंवला, नीम, सैणा, सरस, खैरी, कडीयाला, रोंज, बैवडी व कालाकुड़ा नामक वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। इनमें से कुछ पूरे वर्ष मिलती हैं जबकि कुछ का निश्चित समय है।

इन वनस्पतियों में कुछ इस तरह की जड़ी-बूटियाँ हैं जो लोगों के उपचार व कुछ पशुओं के उपचार में काम आती हैं। कुछ जड़ी-बूटियों को यहाँ इलाज के लिये रखा जाता है। पशुओं के चारे के लिये यहां कई तरह की घास भी पाई जाती है। गाँव वालों की भाषा में यहाँ गवान घास, सुखाल, बरू, दूब, सांवा घास, कांस घास, गांडर घास, छीला पैड, गजीण व टीनुणा घास होती है। कुछ घास बारह-मासी है तो कुछ केवल वर्षा के समय ही होती है।

इस गाँव में आपसी झगड़े आजकल या तो होते नहीं हैं और होते भी हैं तो गाँव वाले आपस में ही मिल-बैठकर निपटा लेते हैं। हालांकि इनकी ग्राम पंचायत राजौरगढ़ है और वहीं पर ग्राम पंचायत होती है पर उस पंचायत के पंचों के पास इनका कोई विवाद कभी भी नहीं गया। फिलहाल जो विवाद निपटाने की व्यवस्था है उसमें मामला ग्रामसभा के सामने लाया जाता है और फैसला हो जाता है। ज्यादा से ज्यादा कभी-कभार संस्था के कार्यकर्ताओं को भी इसमें

भागीदार बनाया जाता है। यहाँ पर सरकारी शिक्षा का कोई केन्द्र नहीं है । बस तरुण भारत संघ का अपना स्कूल ही चलता है। इसके अलावा कोई धर्मशाला, धार्मिक स्थान मंदिर वगैरा कुछ नहीं है।

संस्था के शिक्षण प्रशिक्षण के असर से झाड़-फूँक लगाकर भूत उतारने वालों व अन्य तरह के इलाज करने वालों का धंधा चौपट हो गया है। अब ये लोग झाड़-फूँक में विश्वास नहीं करते हैं। लोगों की आर्थिक स्थिति 1985 से पहले सामान्य से भी अच्छी थी परन्तु सूखे के कारण स्थिति इतनी बिगड़ गई कि भूखे मरने की नौबत आ गई। अब फिर से इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो गई है।

क्या सोचते हैं ये ?

मथुरावट का बालूराम पिछले सात साल से जोहड़ी का फायदा गिनवाता है। उसका कहना है कि ये ऊपर वाली जोहड़ी ने तो हमारा वारा-न्यारा कर दिया। अपने पुराने दिनों की याद करता हुआ वह कहता है कि "बाबूजी समय हमेशा एकसा नहीं रहता कभी हमने गाँव खाली करके जाने का मानस बना लिया था तो आज हम इस बात को सोच भी नहीं सकते।"

गाँव की स्थिति को देखने के लिये जब हम वहाँ पहुंचे तो चक्की के बाहर एक खाट (चारपाई) पर हमें बैठा दिया गया। करीब एक दर्जन लोग चारों ओर से घेर कर बैठ गये। उन्हें लगा जैसे कोई वन विभाग से आया है पर जब हमने अपना परिचय दिया और बात करनी चाही तो खुलकर बात हुई।

सबसे पहला सवाल हमने यही पूछा कि क्या वन विभाग वालों से आप डरते हो। जवाब मिला हमें किसी से डर नहीं लगता, हम सभी का पूरा सम्मान करते हैं, यदि वे कुछ धौंस देते हैं तो फिर हमारा संगठन आगे आ जाता है और हम एकता का सीधा परिचय देते हैं। बाबूराम कहता है कि तभासं हमारे लिये देवता बनकर आया। उन्होंने ही हमें सहयोग किया तभी हमने परम्परागत तरीकों को अपनाते हुए जोहड़ आदि बनाये।

लालू प्रसाद से पूछा कि जोहड़ों के बनने से कितना फायदा हुआ तो वह बताता है कि ''साब जो खेत में दाणा ना होय करा वहाँ दाणा होन लग्गा''। जो खेत में पाणी ना हो वा में पाणी आ गो। हमारी बीरबानी दूर-दूर से पाणी लाये करी पण अब घर के बगल वाला कुंआं में भी पाणी मौजूद है।

अब घना जंगल नजर आने लगा

किशन से बात हुई तो वह भी इन्हीं सारी बातों को अपने तरीके से कहता है व बताता है कि अब हम हाथ से गेहूं नहीं पीसते बल्कि यहां पर चक्की भी लग गई है। इससे हमें भी फायदा हुआ है और घर की महिलाओं को भी। इसी तरह से गाँव का रामकरण भी तरुण भारत संघ की प्रशंसा करता है। कहता है कि इन्हीं के कारण हम और हमारे पशु बचे हुए हैं, वरना इस गाँव में न हम होते न हमारा पशुधन।

इसी समय कालाखेत का प्रसाद भी वहीं आ गया। उसने अपने इंजन की तरफ इशारा करते हुए कहा कि आज यह जो पानी चल रहा है वह इन्हीं की बदौलत है वरना यहां कुछ नहीं रहता।

परिवार की स्थिति मथुरावट

क्रं.स.	परिवार के मुखिया का नाम	पुरुष	महिला	लड़के	लड़की
1.	रामपाल मीणा	2	2	3	4
2.	नानगराम	2	2	5	3
3.	रघुनाथ	4	4	4	3
4.	जगन्नाथ	4	3	5	3
5.	गोरधन	3	2	-	-
6.	नानगराम मीणा	3	2	5	1
7.	छाजूराम	1	1	4	3
8.	मूलचंद	2	1	-	-
9.	बाबूलाल	1	2	2	1
10.	बोदनराम	2	2	4	1
11.	छाजूराम	2	1	-	-
12.	प्रभु मीणा	2	2	3	2
13.	भगवान सहाय	2	2	3	2
14.	राधेश्याम	1	1	5	3
15.	रामधन बलाई	3	2	3	1
16.	बद्री प्रसाद	5	4	3	2
17.	कजोड़ बलाई	3	3	3	3
18.	कन्हैया बलाई	2	2	2	-
19.	रमसी	2	2	4	-
20.	जगन्नाथ बलाई	7	7	4	4
21.	रामचन्द्र	1	1	4	1
22.	जगदीश बलाई	1	1	-	3
23.	बद्री राम	2	2	4	22
4.	मल्लीराम	4	3	5	3
	कुल	61	53	71	38

दूध उत्पादन गाय

	गायों की संख्या			दूध प्रति गाय (किलो ग्राम में)		
क्रम सं.	1985	1992	1997	1985	1992	1997
1.	1	3	5	1	3	5
2.	2	5	7	-	1	3
3.	1	5	8	1	3	4
4.	1	4	6	1	-	2
5.	-	-	1	-	-3	
6.	1	2	5	1	2	3
7.	-	3	4	-	1	2
8.	-	-	-	-	-	-
9.	-	-	-	-	-	-
10.	1	2	3	1	2	3
11.	-	1	2	-	1	2
12.	1	1	2	1	1	2
13.	1	1	2	-	-	2
14.	-	1	3	-	2	3
15.	-	2	2	-	2	3
16.	1	2	2	-	2	3
17.	-	2	2	-	1	3
18.	-	2	2	-	3	3
19.	-	-	3	-	1	3
20.	1	1	2	-	2	3
21.	-	1	2	-	1	2
22.	-	2	3	-	2	3
23.	1	2	3	1	2	3
24.	1	1	3	-	2	3

(क्रम सं. परिवार की स्थिति वाली तालिका के आधार पर है । मुखिया का नाम उसी क्रम से है ।)

दूध उत्पादन भैंस

	भैंसों की संख्या			दूध प्रति भैंस (किलो ग्राम में)		
क्रम सं.	1985	1992	1997	1985	1992	1997
1.	-	2	2	-	-	3
2.	5	10	12	-	2	6
3.	-	5	7	-	1	3
4.	1	2	2	1	2	1/2
5.	1	2	3	1	2	3.1/2
6.	1	1	3	1	3	5
7.	-	2	4	-	2	3
8.	1	1	1	1	1	2
9	-	-	2	-	-	3
10.	1	2	5	1	2	3
11.	1	1	1	1	1	3
12.	-	2	3	-	1	3
13.	-	3	3	-	2	3
14.	1	2	5	1	2	3
15.	-	-	1	-	-	3
16.	-	2	4	-	2	2
17.	-	1	1	-	-	2
18.	-	1	3	-	2	2
19.	2	5	6	-	1	2
20.	2	3	4	1	1	2
21.	-	2	4	1	2	2
22.	-	2	2	1	1	1
23.	1	1	2	1	1	1
24.	-	-	-	-	-	-

(क्रम सं. परिवार की स्थिति वाली तालिका के आधार पर है। मुखिया का नाम उसी क्रम से है।)

दूध उत्पादन बकरी

क्रम सं.	बकरियों की संख्या			दूध प्रति बकरी (किलो ग्राम में)		
	1985	1992	1997	1985	1992	1997
1.	-	-	-	-	-	-
2.	-	10	30	-	-	1/2
3.	-	1	2	-	-	1/2
4.	-	-	-	-	-	-
5.	-	-	3	-	-	-
6.	-	-	-	-	-	-
7.	-	10	30	-	-	1
8.	-	-	-	-	-	-
9.	-	-	-	-	-	-
10.	-	-	-	-	-	-
11.	-	2	4	-	-	1/2
12.	-	5	20	-	-	1
13.	-	-	-	-	-	-
14.	-	1	3	-	1/2	1/2
15.	5	10	15	1/2	1/2	1/2
16.	2	3	12	1/2	1/2	1/2
17.	-	-	-	-	-	-
18.	5	10	20	1/2	1/2	1
19.	-	5	10	-	-	1/2
20.	-	2	2	-	1/2	1/2
21.	-	1	2	-	-	1/2
22.	-	-	-	-	-	-
23.	-	-	-	-	-	-
24.	-	8	25	-	1/2	1/2

(क्रम सं. परिवार की स्थिति वाली तालिका के आधार पर है। मुखिया का नाम उसी क्रम से है।)

कुओं का सर्वेक्षण

क्र. सं.	कुएं के मालिक का नाम	कुएं का नाम	कुएं में पानी (फीट में) 1985	1992	1997
1.	रामपाल मीणा	भोपाला	सूखा	22	28
2.	रघुनाथ, भगवान, राधे	जोहडीवाला	"	30	34
3.	रघुनाथ, राधे, भगवान	मोहनवाला	"	30	35
4.	जगन्नाथ, मूला, श्रवण	कीटला	"	29	34
5.	अर्जुन मीणा	पडेवाला	"	15	24
6.	नानक, छाजू, श्रवण	भगतावाला	"	12	24
7.	जगन्नाथ, बोदन, बाबू	बेरावाला	"	9	16
8.	जगन्नाथ, बद्री, गंगाराम, रामधन	छीलाला	"	23	22
9.	बोदन, चन्द, जगन्नाथ	रोजाला	"	15	24
10.	बोदन, चन्द्र, कजोड़	कुई	"	4.1/2	18

क्र. सं.	कुएं के नीचे जमीन (बीघा में)	सिंचित (बीघा) 1985	1992	1997	कुओं पर इंजन (संख्या में) 1985	1997
1.	9	4	5	8	-	1
2.	15	26	12	14	-	3
3.	16	26	14	15	-	2
4.	25	28	18	22	-	3
5.	5	3	5	5	-	1
6.	11	4	5	8	-	1
7.	8	4	6	8	-	1
8.	8	4	6	8	-	1
9.	10	4	5	8	-	बैलों से
10.	5	2	5	5	-	11

प्रभाव एवं मोनेटेरिंग

ग्राम : माण्डलवास, तहसील :

सं.	नाम कृषक एवं पशुपालक	सन् 1993									सन्			
		कु.भू.	सिं.	असिं	पशु बिक्री व दूध से आय	पशुओं पर किया गया व्यय	पशु एवं दूध से शुद्ध लाभ	फसल से कुल आय	फसल पर किया गया व्यय	फसल से प्राप्त शुद्ध लाभ	कु.भू.	सिं.	असिं	पशु बिक्री व दूध से आय
1.	बुद्धा पुत्र गणेश मीणा	8	4	4	20775	-	20775	43060	-	43060	8	4	4	6727
2.	गेंदा पुत्र लाद्या मीणा	9	2.5	6.5	44770	1500	43270	14150	-	14150	9	2.5	6.5	2771
3.	ग्यारसा पुत्र नानद्या	4.75	3	1.75	20330	7000	13330	6320	800	5520	4.75	2.5	1.75	3428
4.	पांचू पुत्र कालू	4	2.5	1.5	15775	4000	11775	8000	-	8000	4	2.5	1.5	1648
5.	श्रवण पुत्र मांगू	3.5	1.5	2	10665	2000	8665	8100	500	7600	3.5	1.5	2	4948
6.	बक्शा पुत्र मुकुन्दा	12	2	10	12220	3500	8720	13050	-	13050	12	2	10	6458
7.	सिरिया पुत्र किशना	8	3	5	9665	3000	6665	10050	-	10050	8	3	5	1818
8.	जगदीश पुत्र मुकुन्दा	15	2	13	7555	-	7555	13850	-	13850	15	2	13	2798
9.	लीला पुत्र बक्शी	2.5	2.5	-	5110	-	5110	8560	-	8560	2.5	2.5	-	1648
10.	रामपाल पुत्र रेवड	8.25	3.25	5	28440	11680	16760	12900	650	12250	8.5	3.5	5	8000

सर्वेक्षण - प्रपत्र

राजगढ़, जिला : अलवर

1998					पशु ब्रि. व दूध से लाभ		फसल उत्पादन से प्राप्त लाभ		1 वरूमि में प्राप्त कुल लाभ		दोनों वर्षों में लाभ	अन्य
पशुओं पर किया गया व्यय	पशु एवं दूध से शुद्ध लाभ	फसल से कुल आय	फसल पर किया गया व्यय	फसल से प्राप्त शुद्ध लाभ	1993	1998	1993	1998	1993	1998		
4000	63275	54540	1800	52740	20775	63275	43060	52740	43060	116015	72955	—
7500	20210	36400	1200	35200	43270	20210	14150	35200	57420	55410	2010	पशुओं की मृत्यु होने के कारण
-	34280	10370	1650	8720	13330	34280	5520	8720	18850	43000	24150	
7000	9425	28800	1850	26950	11775	9425	8000	26950	19775	36375	16600	
12500	36920	19475	870	18605	8665	36920	7600	18605	16265	55525	39260	—
14500	50060	35250	1200	34050	8720	50060	13050	34050	21770	84110	62240	—
4000	14140	32190	4400	27790	6665	14140	10050	27790	16715	41930	25215	—
5300	22622.5	28925	1970	26955	7555	22622.5	13850	26955	21405	49577.5	28172.5	—
5000	11425	25800	1100	24700	5110	11425	8560	24700	13670	24700	11030	—
-	8000	28495	9200	19295	16760	8000	12250	19225	29010	27295	1715	पत्नी की मृत्यु होने से आय घटी

अब तक प्रकाशित हमारे प्रकाशन

1.	लोक परंपरा से मिला रास्ता	:	राजेन्द्र सिंह
2.	लोगों के जोहड़	:	राजेन्द्र सिंह
3.	ग्राम स्वावलम्बन की दिशा में	:	राजेन्द्र सिंह
4.	जलागम विकास के आयाम	:	राजेन्द्र सिंह
5.	सबको सहेजने का संघर्ष	:	अरूण कुमार त्रिपाठी
6.	ग्राम स्वराज की राह पर	:	(तभास के कार्यों पर सर्व सेवा संघ का प्रकाशन)
	भांवता-कोल्याला	:	राजेश रवि-जिनेश जैन
7.	साझे श्रम का कमाल : बाघ की दहाड़ और समाज की खुशहाली	:	राजेश रवि-जिनेश जैन
8.	भारतीय आस्था एवं पर्यावरण रक्षा	:	राजेन्द्र सिंह
9.	बाढ़ : विनाश से मुक्ति का एक अध्ययन	:	राजेश रवि-जिनेश जैन
10.	चार गांवों की कथा	:	डॉ. शची आर्य
11.	Story of a Rivulet Aravari	:	Jashbhai Patel
12.	Rejuvenating the Ruparel	:	Vir Singh
13.	फिर से बहने लगी रूपारेल	:	प्रो. मोहन श्रोत्रिय-अविनाश
14.	सरस गयी सरसा	:	प्रो. मोहन श्रोत्रिय-अविनाश
15.	अरवरी नदी के पुनर्जन्म की कथा	:	प्रो. मोहन श्रोत्रिय-अविनाश
16.	जी उठी जहाजवाली नदी	:	प्रो. मोहन श्रोत्रिय-अविनाश
17.	सम्मान का पानी लानेवाली : भगाणी-तिलदेह नदी	:	प्रो. मोहन श्रोत्रिय-अविनाश
18.	अरावली के आँसू	:	रमेश थानवी व राजेन्द्र सिंह
19.	अरावली का सिंहनाद	:	रामजन्म चतुर्वेदी
20.	धराड़ी नये संदर्भों में	:	प्रो. मोहन श्रोत्रिय
21.	Regenerating the Forest : the TBS Way	:	Prof. Mohan Shrotriya

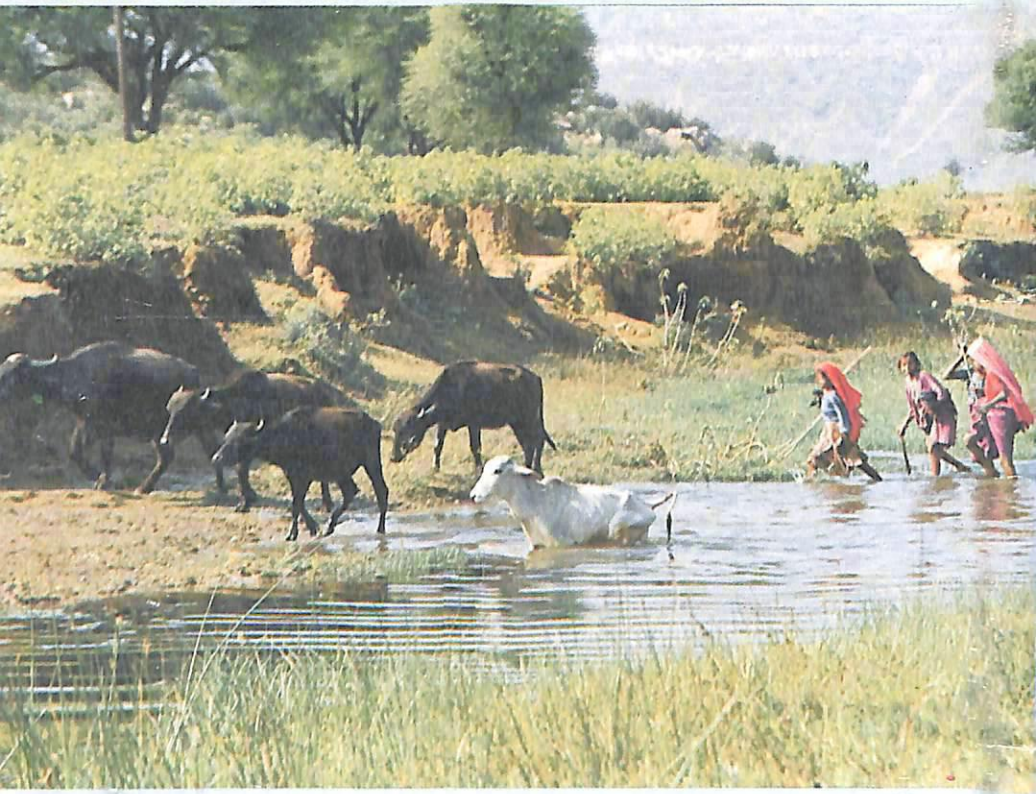

तरुण भारत संघ

भीकमपुरा-किशोरी, थानागाजी, अलवर-301 002